Buy OUR PUBLICATIONS:
PaperBacks || HardCover || e-Books || Indian Editions
Free सम्पूर्ण हिन्दी गीता

https://www.gita-society.com/700-hindi-verses2.pdf

NINE PRINCIPAL UPANISHADS

(हिन्दी में नौ प्रमुख उपनिषद्)

सभी मंत्रों का सरल स्पष्टीकरणात्मक हिन्दी अनुवाद, कठिन मंत्रों एवं शब्दों की व्याख्या या भावार्थ, नये पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण मंत्रों का मोटे अक्षरों में मुद्रण, भगवद्गीता के उद्धरण, अध्याय व खण्डों के शीर्षक, ॐ ध्वनि-ध्यान तकनीक, नोट्स, परिशिष्ट, संदर्भ एवं प्रति संदर्भ सहित.

अंग्रेजी संकलन एवं संपादन
रामानन्द प्रसाद, पी.एच.डी.

हिन्दी रूपान्तरण
वाचस्पति पाण्डेय, पी.एच.डी.

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

© अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी
इस उपनिषद् का कोई भी भाग अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी
को उचित श्रेय देने के पश्चात् अवाणिज्यिक उद्देश्य के लिए
उपयोग किया जा सकता है.

एक पूर्वावलोकन

"डॉ प्रसाद के द्वारा की गई यह व्याख्या लोगों को भारत के प्राचीन ऋषियों के द्वारा प्राप्त महान उपलब्धियों के संबंध में महत्त्वपूर्ण विचारों की जानकारी देता है. यह उन महान गुरुओं के द्वारा दी गई शिक्षा का सारांश प्रस्तुत करता है जिसे पढ़ना और समझना आसान है. यह आपको इस विषय के गूढ़ार्थ समझने के लिए प्रेरित भी करता है."

—माइकल बिलवेड, न्यूयार्क

संदर्भ ग्रन्थों के संक्षिप्त रूप

०१ अथ.वे. अथर्ववेद
०२ ईशा.उ. ईशावास्य उपनिषद्
०३ ऐ.उ. ऐतरेय उपनिषद्
०४ कठ.उ. कठ उपनिषद्
०५ केन.उ. केन उपनिषद्
०६ छा.उ. छान्दोग्य उपनिषद्
०७ तैत्ति.उ. तैत्तिरीय उपनिषद्
०८ प्र.उ. प्रश्न उपनिषद्
०९ बृह.उ. बृहदारण्यक उपनिषद्
१० मा.उ. माण्डूक्य उपनिषद्
११ मु.उ. मुण्डक उपनिषद्
१२ यजु.वे. यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता
१३ श्वे.उ. श्वेताश्वतर उपनिषद्
१४ सा.वे. सामवेद
१५ ऋ.वे. ऋग्वेद
१६ भ.गी. भगवद् गीता
१७ म.भ. महाभारत

विषय सूची

भूमिका ..... **ix**

१. ईशावास्योपनिषद् **1**

अध्याय १ ..... **1**

सब कुछ ब्रह्ममय है 1
कमल दल की तरह जीयो 2
मूढ़मति की नियति 2
अवर्णनीय आत्मा का वर्णन 2
अद्वैत दर्शन का सौन्दर्य 3
कार्योपासना कैसे करें 3
अन्तर्विरोधों का समाधान 3
अहम् का त्याग से निर्वाण 5
ईश्वर को सदा याद रखो 5

२. केनोपनिषद् **6**

अध्याय १. ब्रह्म ज्ञान **6**

ब्रह्म हमारी इन्द्रियों को शक्ति देता है 6

अध्याय २. ब्रह्म अज्ञेय है **7**

बुद्धिमान् से ब्रह्म अज्ञात होता है 7

अध्याय ३. ब्रह्म विश्व संचालन करता है **8**

सब कुछ ईश्वर की शक्ति से होता है 8

अध्याय ४. ब्रह्म की महिमा **9**

देवताओं को ब्रह्म से शक्ति मिलती है 9

३. कठोपनिषद् **11**

अध्याय १. नचिकेतोपाख्यान **11**

खण्ड १. नचिकेता को मृत्यु का डर नहीं है. **11**

यमद्वार पर नचिकेता की प्रथम परीक्षा 12
नचिकेता को तीन वरदान 12
नचिकेता की पहली इच्छा कि पृथ्वी पर उसके पिता संतुष्ट हों 12
नचिकेता की दूसरी इच्छा याज्ञिक अग्नि को समझना 12

मृत्यु के पश्चात् जीवन के ज्ञान के रूप में नचिकेता की तीसरी इच्छा 13
नचिकेता की यम द्वारा पुनर्परीक्षा..... 13
खण्ड २. पुरुषोत्तम का अस्तित्व 14
नचिकेता परीक्षा में उतीर्ण हुआ..... 14
संन्यास और साधना दोनों आवश्यक 16
ॐ ब्रह्मस्वरूप है..... 17
आत्मा शाश्वत और अविनाशी है..... 17
ब्रह्म के लक्षण..... 18
ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के आवश्यक गुण..... 18
ईश्वर सर्वशक्तिमान् है..... 19
खण्ड ३. साधना 19
सर्वव्यापी एवं व्यक्तिगत आत्मा..... 19
नाचिकेत यज्ञ साधन के रूप में 19
रथ में बैठे जीव की गृह की ओर यात्रा 19
मन पर नियंत्रण आवश्यक है..... 20
परम लक्ष्य तक पहुंचने का क्रम..... 20
योग के प्रकार..... 20
मृत्यु से मोक्ष प्राप्ति के विषय में..... 20
इस शिक्षा के अमर तत्त्व 21
खण्ड ४. अंतरात्मा.....21
आत्मा को इंद्रियों से नहीं देखा जा सकता 21
आत्मा तीनों अवस्थाओं, सभी इंद्रियों में कार्य करती है..... 21
परमात्मा एवं जीवात्मा एक ही है..... 22
पुनर्जन्म का कारण..... 22
शाश्वत ईश्वर जीवों के शरीर में वास करता है 22
अनेकता में एकता देखने के परिणाम 23
खण्ड ५. आत्म-नियंत्रण के विभिन्न चरण 23
जीवात्मा और सृष्टि 23
जीव का मूर्त अवतार..... 24
जीवात्मा और परमात्मा एक ही है..... 24
आत्म-ज्ञान का अविवर्णीय आनंद 24
विश्व का स्वयं प्रकाशित प्रकाश 25
खण्ड ६. जीवन वृक्ष.....25
इस ब्रह्माण्ड का स्रोत ब्रह्म है 25
ब्रह्म का महान भय..... 26

विश्व जीव का क्रम 26
योग विधि 27
आत्म-ज्ञान को शास्त्रों में श्रद्धा से ही प्राप्त किया जा सकता है 27
इच्छाओं तथा आसक्ति से मुक्ति आवश्यक है 27

४. प्रश्नोपनिषद् 29

प्रश्न १. सृष्टि का आविर्भाव 29
प्रश्न २. प्राण ईश्वर है 30
प्रश्न ३. प्राण की उत्पत्ति 32
प्रश्न ४. चैतन्यता के तीन चरण 33
प्रश्न ५. ॐ की साधना 35
प्रश्न ६. आत्मा का निवास 36
परमेश्वर की सोलह कलाएं 36

५. मुण्डकोपनिषद् 38

अध्याय १ खण्ड १. 38
विद्या के दो प्रकार 38
सृष्टि का उद्देश्य 38
खण्ड २ 39
अग्निहोत्र स्वर्गगामी होते हैं 40
अलौकिक ज्ञान मोक्षगामी होता है 40
अध्याय २. खण्ड १. 41
ब्रह्म सभी वस्तुओं का स्रोत है 41
खण्ड २ 42
आत्मा साकार एवं निराकार दोनों है 42
तीर, धनुष एवं लक्ष्य का रूपक 42
ब्रह्मज्ञान माया को पार करनेवाला सेतु है 42
अध्याय ३. खण्ड १ 44
दो पक्षियों की अनुरूपता 44
खण्ड २. 45
ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म समान है 46

६. माण्डुक्योपनिषद् 48

ॐ का क्या तात्पर्य है? 48
अध्याय १- आगम प्रकरण 49

व्यक्तिगत चैतन्यता (आत्मन्) की तीन अवस्थाएं 50
हमारे तीनों शरीरों से जुड़ी हुई तीन अवस्थाएं 51
चैतन्यता की तुरीयावस्था 52
ॐ ध्वनि साधना तकनीक 55

७. तैत्तिरियोपनिषद् 57

अध्याय १. ज्ञान का पाठ 57
खण्ड १. प्रार्थना 57
खण्ड २. उच्चारण पाठ 57
खण्ड ३. संहिता विषयक साधना 57
खण्ड ४. बुद्धि के लिए प्रार्थना 58
खण्ड ५. चार रहस्यमयी वचन 59
सभी उक्तियों (व्याहृतियों) का विवेचन 59
खण्ड ६. सगुण ब्रह्म की साधना 60
खण्ड ७. साधना के पंच स्वरूप 60
खण्ड ८. ॐ की साधना 60
खण्ड ९. अनुशासन 61
खण्ड १०. प्रत्येक दिन साधना के लिए एक मंत्र 61
खण्ड ११. शिष्यों को उपदेश 61
खण्ड १२. प्रार्थना 62
अध्याय २. ब्रह्मानन्द, ब्रह्म का आनन्द 62
(आत्मा के पांच आवरण) 62
खण्ड १. अन्न या शरीर के आवरण 62
खण्ड २. प्राणमय आवरण 63
खण्ड ३. मनोमय आवरण 63
खण्ड ४. बुद्धि या विज्ञान का आवरण 64
खण्ड ५. आनन्द का आवरण 64
खण्ड ६. ब्रह्म सभी का स्रोत है 64
खण्ड ७. निर्भीक ब्रह्म 65
खण्ड ८. ब्रह्मानन्द 65
खण्ड ९. अच्छाई और बुराई का विलय 66
अध्याय ३. वरुण-भृगु संवाद 67
खण्ड १. ब्रह्म की परिभाषा तथा तपस्या से ब्रह्म की प्राप्ति 67
खण्ड २. शरीर के रूप में ब्रह्म 67
खण्ड ३. प्राण के रूप में ब्रह्म 67

खण्ड ४. मन के रूप में ब्रह्म 68
खण्ड ५. बुद्धि के रूप में ब्रह्म 68
खण्ड ६. ज्ञान-विज्ञान या आनन्द के रूप में ब्रह्म 68
खण्ड ७. अन्न का महत्त्व (क) 69
खण्ड ८. भोजन का महत्त्व (ख) 69
खण्ड ९. भोजन का महत्त्व (ग) 69
खण्ड १०. ब्रह्म-साधना 69

८. ऐतरेयोपनिषद 72

अध्याय १. सृष्टि सिद्धांत 72
खण्ड १. जीव की सृष्टि 72
खण्ड २. शरीर निर्माण 73
खण्ड ३. अन्नोत्पादन 73
अध्याय २: आत्मा का पुनर्जन्म 73
अध्याय ३. ब्रह्म प्रकाश 74
परिशिष्ट २. परमपिता परमात्मा का अवरोहण 77

९. श्वेताश्वतरोपनिषद् 81

अध्याय १ 81
मुख्य कारण 81
दैविक चक्र 81
जीव, जगत् एवं जगदीश 82
अध्याय २ 83
योग प्रक्रिया 84
ईश्वर की महिमा का वर्णन 85
अध्याय ३ 85
रुद्र (शिव) ईश्वर हैं 85
ब्रह्म के व्यक्तिगत एवं अव्यक्तिगत भाव 86
परमात्मा को केवल दृष्टांत से समझा जा सकता है 86
अध्याय ४ 87
दो पक्षियों का दृष्टांत 88
परमात्मा की ओर 88
अध्याय ५ 90
जीवों के पुनर्जन्म का कारण 91

अध्याय ६ 92
परमेश्वर इस सृष्टि के उपादान और निमित्त दोनों कारण है.....93
ब्रह्म प्रकाशों का प्रकाश है 93
परमेश्वर का मार्ग.....94
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् की व्याख्या 95

भूमिका

सभी वेदों के विषय मुख्यतः चार भागों में रखे जा सकते हैं–१. **संहिता** में प्रकृति की अलौकिक शक्तियों के आराधना संबंधित मंत्र हैं. २. **ब्राह्मण** भाग में धार्मिक कर्मकाण्ड एवं अन्य संस्कारों के विषय में वर्णन है. ३. **आरण्यक** में विभिन्न प्रकार के ध्यान व उपासना का वर्णन है जबकि ४. **उपनिषदों** में समय-समय पर होनेवाले गुरु व शिष्यों के मध्य ब्रह्म, सृष्टि का सनातन उद्देश्य तथा मानव जीवन के लक्ष्य के विषय में दार्शनिक विवेचन और विभिन्न ऋषियों के उपदेश संकलित हैं. वेदों के मंत्र कर्मकाण्ड के उपर ध्यान दिलाते हैं और ब्राह्मण इन वैदिक कर्मकाण्ड की नियमावली प्रस्तुत करते हैं, जबकि उपनिषद् इन सभी कर्मकाण्ड के घोर विरोधी हैं.

वस्तुतः वेदों के दार्शनिक भाग ही उपनिषद् हैं. वेदों के अंतिम भाग होने के कारण इसे वेदान्त भी कहा जाता है. ये उपनिषद् चारों वेदों से संबंधित हैं इसीलिए आज ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद–चारों से संबंधित उपनिषद् प्राप्त हैं. भारतीय अध्यात्म साहित्य केवल स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्ति का साधन नहीं है वरन् यह जीने की श्रेष्ठ कला है जिसके आधार पर मानव मर्त्यलोक एवं स्वर्गलोक में सुख का भोग करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है. ज्ञान की इस श्रृंखला में उपनिषद् का ज्ञान श्रेष्ठतम ज्ञान है.

सभी उपनिषदों का एक महत्त्वपूर्ण उददेश्य है. "उपनिषद्" का व्युत्पति के अनुसार संस्कृत में अर्थ है "उप" (निकट), "नि" (नीचे, पास),"षद्" (बैठना) अर्थात् 'किसी गुरु के पास (नीचे) बैठना. इस प्रकार "उपनिषद्" का शाब्दिक अर्थ है किसी प्रबुद्ध अध्यापक के पास जाकर बैठना. अर्थात् गुरु के सामीप्य में, उसके प्रति समर्पण में स्वयं को मिटाकर, भूलकर इस जगत् के मूलभूत सत्य का ज्ञान प्राप्त करना. उनसे ईश्वर के साक्षात् आध्यात्मिक दर्शन के विषय में ध्यान से सुनना. भारतीय विद्वानों के लिए "उपनिषद्" से तात्पर्य वैसे साहित्य से है जो कि हमारे (शिष्यों के) वर्तमान अज्ञान को नष्ट कर परम ज्ञान की प्राप्ति में सहायक बनते हैं.

सामान्य जन के लिए उपनिषद् रहस्यात्मक है. उसका अर्थ वे समझकर भी नहीं जान पाते. वस्तुतः उपनिषद् समस्त आध्यात्मिक तत्त्वों का सारभूत ज्ञान है. यह अध्यात्म विद्या का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ तो है ही साथ ही साथ यह भारतीय दर्शनशास्त्र में ब्रह्मज्ञान के सर्वोत्तम ग्रंथों में प्रतिष्ठित है. यह आत्मज्ञान एवं आत्मशान्ति का ऐसा पाठ है जिसके ज्ञान से जीवन एवं मृत्यु क्षण में ही नहीं वरन् प्रत्येक क्षण शांति प्राप्त होती है. यह ऐसी विद्या है जो इस जगत् की असारता का आभास कराती है. यह संसार की कारणभूत अविद्या को नष्ट कर ब्रह्मविद्या की प्राप्ति कराती है. भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य विचारकों के लिए यह सदैव प्रेरक ग्रंथ रहा है. उपनिषद् उच्च जीवन के लिए महान आदर्शो का समन्वय और सम्पूर्ण ज्ञान का निरूपण करनेवाला ग्रंथ है. किस प्रकार मानव भौतिक जगत् में रहकर भी अध्यात्म पथ पर अग्रसर हो सकता है इसकी प्रेरणा हमें उपनिषदों से ही प्राप्त होती है. शाश्वत मूल्यों की उपासना से ही मनुष्य वर्तमान एवं भावी जीवन को सफल बना सकता है यही सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में संग्रहित है जिनकी व्याख्या उपनिषदों में हुई है.

वैसे दो सौ से भी अधिक उपनिषद् ज्ञात है, उसमें से एक मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों की सूची है जिसमें स्वयं इस उपनिषद् का स्थान अंतिम है. इसके प्रारंभ में जो बारह उपनिषदों की सूची है वे सबसे पुराने एवं महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं. वे सभी छठी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं. उनमें से नौ प्रमुख उपनिषद् यहां पर दिये गये हैं जिनके उपर शंकराचार्य ने अपना भाष्य लिखा. इन नौ उपनिषदों में से प्रथम स्थान **ईशावास्योपनिषद्** का है जो शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता) का चालीसवां अध्याय है. इसका प्रथम मंत्र "ईशावास्यम्" से प्रारंभ होने के कारण ऐसा नाम पड़ा है. इसमें कुल अठारह मंत्र हैं जिनमें तत्त्वज्ञान एवं साधना दोनों का समावेश है. अन्य आठ उपनिषद् आरण्यक और ब्राह्मण ग्रंथों के भाग हैं. इन सभी में परब्रह्म परमेश्वर के निर्गुण एवं सगुण स्वरूप का गुणगान किया गया है.

केनोपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मतत्त्व है जिसे गुरु-शिष्य संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है. इसमें बताया गया है कि ज्ञान ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है, कर्म नहीं. जो भी इस ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह जन्म-मरण से मुक्त होकर अमर हो जाता है. **कठोपनिषद्** कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा के अंतर्गत आता है जिसमें यम और नचिकेता के संवाद के रूप में स्वर्ग प्राप्ति हेतु अग्नि विद्या तथा मोक्ष हेतु ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन हुआ है. **प्रश्नोपनिषद्** का आरंभ छः प्रमुख ऋषियों की ब्रह्मज्ञान एवं सृष्टि के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा से छः प्रमुख प्रश्नों से होता है जिसके आधार पर इसका नाम रखा गया है. **मुण्डकोपनिषद्** अथर्ववेद के शौनक शाखा से संबंधित है. यह उपनिषद् तीन मुण्डक तथा तीनों मुण्डक दो-दो खण्डों में विभाजित है. इस प्रकार इन छः खण्डों में परम गुह्य ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया गया है. **माण्डूक्योपनिषद्** में आत्मा एवं ओंकार का निरूपण है. **तैत्तिरियोपनिषद्** में वैदिक शिक्षा, आत्म तत्त्व और ब्रह्म की प्राप्ति के विषय में ज्ञान है. **ऐतरेयोपनिषद्** सृष्टि रचना का क्रम दर्शाता है जिसमें लोकों, लोकपालों, देवताओं, मनुष्यों तथा अन्न की उत्पत्ति के विषय में वर्णन है. **श्वेताश्वतरोपनिषद्** के ११३ मंत्रों में परब्रह्म का स्वरूप, सृष्टि रचना, मोक्ष के उपाय, ध्यान एवं प्राणायाम की विधियां, प्रकृति एवं जीवात्मा का स्वरूप, ओंकार साधना, सिद्धियों की प्राप्ति, बंधन, विद्या एवं अविद्या का स्वरूप, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि आध्यात्मिक अंगों का समावेश है.

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, और श्रीमद् भगवद-गीता को सनातन धर्म की आध्यात्मिक परम्परा में धर्मशास्त्र-त्रयी का अंग माना जाता है. यह पुस्तक उन नये पाठकों के लिए अधिक लाभदायक होगा जिन्होंने सर्वप्रथम गीता का अध्ययन किया है और जो वैदिक संस्कृति, धर्म, एवं संस्कृत के कुछ शब्दों से परिचित हैं. उपनिषद् के कुछ कठिन मंत्रों को समझना या समझाना आसान नहीं है तथा अनिवार्य भी नहीं है. नये पाठकों को सर्वप्रथम **मोटे अक्षरों** में छापे गये मंत्रों का अध्ययन करना चाहिए. उपनिषदों का उच्चतर पाठन किसी सुयोग्य शिक्षक के समीप बैठकर करना चाहिए.

रामानन्द प्रसाद
फ्रीमॉन्ट, कैलिफोर्निया, USA
September 15, 2016

१. ईशावास्योपनिषद्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते.
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ! अनन्त है ब्रह्म, अनन्त है सारा जीव-जगत,
उदित होता अनन्त ब्रह्म से ही अनन्त जीव-जगत.
अनन्त ब्रह्म से अनन्त जीव-जगत निकलने के बाद,
शेष रहता है वह अनन्त ब्रह्म ही.

(इस श्लोक की विस्तृत व्याख्या पुस्तक के अन्त में देखें)

शुक्ल यजुर्वेद का अंतिम पाठ ईशावास्योपनिषद् के रूप में प्रख्यात है. यह लघुतम उपनिषदों में से एक है जो दार्शनिक ग्रंथ कम है और ललित काव्य ज्यादा है. इसमें केवल १८ श्लोक हैं. पारंपरिक रूप से उपनिषदों का पाठ इसी उपनिषद् से प्रारंभ होता है. इस पुस्तक में भी इसे उसी अनुक्रम में रखा गया है.

अध्याय १

सब कुछ ब्रह्ममय है

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत्.
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यविद् धनम्.

१. जो कुछ भी इस नश्वर जगत में है, उसमें ईश्वर का वास है. ईश्वर ने तुम्हें जो कुछ भी दिया है, उसका इस (त्याग) भाव से उपयोग करो कि इसमें कुछ भी तुम्हारा नहीं है, सब कुछ ईश्वर का है. इसलिए सांसारिक भोगों के पीछे मत भागो.

अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर कि "यह सब कुछ कृष्णमय है," मनुष्य मुझे प्राप्त करता है; ऐसा महात्मा बहूत दुर्लभ है (भ.गी. ७.१६). (भ.गी. ७.०७ औ.र १८.६६ भी देखें). है अर्जुन ! अविनाशी परमात्मा अनादि और विकार-रहित होने के कारण शरीर में वास करता हूआ भी न कुछ करता है और न देह से लिप्त होता है. (भ.गी. १३.३१)

संपूर्ण जगत् भगवद्मय है. प्रभु ही सर्जक, संचालक और सहायक हैं. यह जगत् ईश्वर से, ईश्वर के द्वारा और ईश्वर के लिए बना है. इसमें वह जीवात्मा के रूप में रहता है, खेलता है और अपनी सृष्टि को उपभोग करता है.

वेदों ने जिन्हें सात महावाक्य कहा है, वे ये हैं–

(1) सर्वं खल्व् इदं ब्रह्म (सामवेद, छा.उ. 3.14.01). सब कुछ ब्रह्म है, क्योंकि सब कुछ इसी से जन्मा है, इसी में रहता है और अन्ततः इसी में मिल जाता है.

(2) ब्रह्मैवेदं विश्वम् इदम् वरिष्ठम् (अथर्ववेद, मु.उ. 2.2.11). ब्रह्म सब कुछ है, सर्वत्र है. यह संपूर्ण विश्व वास्तव में परब्रह्म ही है. बायबिल में भी कहा गया है– तुम ईश्वर हो (John 10.34) वेद और उपनिषद् आगे कहते हैं–

(3) प्रज्ञानं ब्रह्म (ऋग्वेद, ऐ.उ. 3.03). चैतन्यता ब्रह्म ही है.

(4) अहम् ब्रह्मास्मि (यजुर्वेद, बृह.उ. 1.04.10). मैं ब्रह्म ही हूं.

(5) तत् त्वम् असि (सामवेद , छा.उ. 6.08.07). तुम ब्रह्म ही हो.

(6) अयम् आत्मा ब्रह्म (अथर्ववेद, मा.उ. 2.02**).** जीवात्मा ब्रह्म ही है.

(7) इदं विबभूव सर्वम् (ऋग्वेद 8.68.02). वह जो एक है, वही यह सव है.

कमल दल की तरह जीयो

२. सभी लोगों को अपने नियत कर्म करते हुए–अहंकार और फलासक्ति के बिना–संपूर्ण जीवन जीने की इच्छा रखनी चाहिए. कर्म बन्धन से बचने के लिए कोई और दूसरा उपाय नहीं है.

श्रीमद् भगवद्गीता में भी कहा गया है–जो मनुष्य कर्मफल में आसक्ति का त्यागकर, सभी कर्मों को परमात्मा को अर्पण करता है, वह कमल के पत्ते की तरह पापरूपी जल में कभी लिप्त नहीं होता. (भ.गी. ५.१०)

मूढ़मति की नियति

३. जो आत्मबोध से रहित हैं, वे आत्महन्ता हैं, उनका जन्म अधम योनि में होता है और वे मृत्योपरान्त भी आत्मज्ञान से रहित ही होते हैं.

हे अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त करते हैं, फिर घोर नरक में जाते हैं. (भ.गी. १६.२०)

अवर्णनीय आत्मा का वर्णन

४. आत्मा अचल है, फिर भी सदा चलायमान रहता है. यह मन से भी अधिक चंचल है. इसे बुद्धि के द्वारा भी नहीं पकड़ा जा सकता क्योंकि यह मन और इन्द्रियों से सदा आगे रहता है. इस प्रकार आत्मा सबसे तेज दौड़ने वाला है. आत्मा की उर्जा (प्राण) ही

प्राणियों को जीवित रखती है. वस्तुतः आत्मा किसी प्रकार का कोई कार्य नहीं करती है.

५. आत्मा चलायमान है और अचल भी है. यह दूर भी है और पास भी है. यह सभी जीवों के अन्दर भी है और बाहर भी है.

सभी चर और अचर भूतों के बाहर और भीतर भी वही है. सूक्ष्म होने के कारण वह मनुष्य की इन्द्रियों द्वारा भी न तो देखा या जाना जा सकता है तथा वह सर्वव्यापी होने के कारण अत्यन्त दूर भी है और समीप भी. (भ.गी. १३.१५)

अद्वैत दर्शन का सौन्दर्य

६. एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने जीवात्मा को सभी में देखता है और सभी को अपने जीवात्मा में देखता है. इसलिए न तो वह किसी से घृणा करता है और न ही किसी को हानि पहुंचाता है. ऐसा व्यक्ति दूसरे से उसी तरह प्रेम करता है जैसे कोई ईश्वर से प्रेम करता है.

७. जिसने अपनी जीवात्मा का दर्शन कर लिया है और जो सभी जीवों को एक दृष्टि से देखता है, उस विवेकशील प्राणी के लिए क्या शोक और क्या मोह!

जो एक को सभी में और सभी को एक में देखता है वह उसे सर्वत्र और सभी चीजों में देखता है. इसे अच्छी तरह जानना और जीवात्मा एवं परमात्मा के एकात्म को समझना ही मानव जीवन की परम उपलब्धि और एकमात्र लक्ष्य है.

कार्योपासना कैसे करें

८. वह सर्वव्यापी, दीप्तिमान्, विदेह, निष्कलंक, सर्व शक्तिमान्, शुद्ध, पापकर्म से अस्पृष्ट, सर्वदृष्टिमान्, सर्वज्ञ, अनुभवातीत और स्वयंभू है. वह सभी को अपने कर्तव्यों एवं कर्मों के निर्वहण के लिए फल प्रदान करता है.

अन्तर्विरोधों का समाधान

९. वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं जो केवल अविद्या (कर्मकाण्ड) की ही उपासना करते हैं. जो केवल विद्या (शास्त्र ज्ञान) की ही उपासना करते हैं वे उससे भी घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं.

वे जो सांसारिक इच्छापूर्ति के लिए अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैं वे राजसिक प्रकृति के होते हैं. ऐसे व्यक्ति एक बालक की तरह अज्ञानी होते हैं, क्योंकि वे अपने को ईश्वर से भिन्न मानते हैं. कर्मविहीन, केवल सैद्धान्तिक शास्त्र ज्ञान की प्रकृति तामसिक है. इसकी प्राप्ति व्यर्थ है.

१०. हमें ज्ञानी पुरुषों ने बताया है कि एक वस्तु की विद्या से प्राप्ति होती है और दूसरे वस्तु की अविद्या से प्राप्ति होती है. अविद्या (कर्मकाण्ड) से स्वर्ग प्राप्त करते हैं और विद्या (शास्त्र ज्ञान) से आत्मज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है.

११. जो अविद्या और विद्या दोनों की साथ-साथ उपासना करते हैं वे अविद्या द्वारा स्वर्ग प्राप्ति का उलंघन कर विद्या (आत्मज्ञान) द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं.

श्लोक संख्या 9. 10, और 11 के पीछे का भाव है कि हमें कभी भी कर्म या ज्ञान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए. कर्मभूमि से ही ज्ञान का फल प्राप्त होता है. इसलिए पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा कर्म को अच्छा माना गया है (भ.गी. 6.02). हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि संपूरक हैं (भ.गी. 18.78).

१२. जो यह जाने बिना कि ये देवता ईश्वर नहीं हैं—अपनी इच्छापूर्ति के लिए—केवल साकार ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे घने अंधकार में प्रवेश करते हैं. जो केवल निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे और भी अधिक घने अंधकार में प्रवेश करते हैं.

उस अव्यक्त में आसक्त चित्तवाले मनुष्यों को साधना में क्लेश अधिक होता है, क्योंकि देहधारियों द्वारा अव्यक्त की गति कठिनाई-पूर्वक प्राप्त होती है. (भ.गी. १२.०५)

१३. ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि एक वस्तु साकार ब्रह्म के ज्ञान से प्राप्त होती है, और दूसरी वस्तु निराकार ब्रह्म के ज्ञान से प्राप्त होती है.

१४. जो साकार और निराकार ब्रह्म दोनों की उपासना करते हैं, उनका मृत्यु का भय साकार ब्रह्म की उपासना से समाप्त हो जाता है और वे निराकार ब्रह्म की उपासना से ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परन्तु हे अर्जुन! जो भक्त मुझको ही अपना परम लक्ष्य मानते हुए सभी कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्यभक्ति के द्वारा मेरे साकार रूप का ध्यान करते हैं, ऐसे भक्तों का, जिनका चित्त मेरे सगुण स्वरूप में स्थिर रहता है, मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार-सागर से उद्धार कर देता हूं. (भ.गी. १२.०६-०७).

श्लोक 12, 13 और 14 के पीछे का भाव है कि हमें ब्रह्म के साकार और निराकार दोनों पहलू को अच्छी तरह से समझना चाहिए. परब्रह्म मानवीय संकल्पना के साकार और निराकार रूप से परे है. वह मानव परिकल्पना से लोकोत्तर और कल्पनातीत है.

अज्ञानी मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के मन, बुद्धि तथा वाणी से परे, परम अविनाशी दिव्य रूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं बिना रूपवाला निराकार हूं तथा रूप धारण करता हूं. (भ.गी. ७.२४)

अहम् का त्याग से निर्वाण

१५. सत्य का स्वरूप अज्ञान-जनित अहम् के सुनहरे आवरण से आवृत (ढका) है. हे सूर्य देव! इसे अनावृत करो जिससे सत्य के प्रति समर्पित हम इसका दर्शन कर सकें. (भ.गी. 18.66 भी देखें)

१६. हे सूर्य देव! **हे** सर्व नियन्ता और सर्व समर्थ हमारे अज्ञान को हटाकर हम पर ज्ञान-रूपी शीत तरंगों की वर्षा करो, जिससे हम आपके लोकोत्तर स्वरूप को समझ सकें और यह जान सकें कि जो कुछ आपमें है वही हमारे में भी है.

ईश्वर को सदा याद रखो

१७. हमारी सांसें सर्वव्यापी, अनश्वर प्राण में विलीन हो जाये और हमारा शरीर भस्मीभूत हो जाये. हे मन! अपने पिछले कर्मों को याद कर! याद कर अपने पिछले कर्मों को!

गीता के अनुसार, जीवन के अंतिम क्षणों में, हमने जो कुछ भी जिंदगी में किया है उसी की याद आती है. हे अर्जुन! मनुष्य मरते समय जिस किसी भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. इसलिए तुम सदा मेरा स्मरण करो और अपना कर्तव्य करो. इस तरह मुझमें अर्पण किए मन और बुद्धि से युक्त होकर निस्सन्देह तुम मुझको ही प्राप्त होगे. (भ.गी. ८.०६-०७)

१८. हे अग्नि! हमें सत्यमार्ग पर ले चलो! आप हमारे सभी कर्मों को जानते हो, इसलिए हमें पाप, मोह आदि से दूर रखो. इसके लिए हम आप से बार-बार विनती करते हैं

ॐ तत् सत्

२. केनोपनिषद्

ॐ सह नाववतु.
सह नौ भुनक्तु.
सह वीर्यं करवावहै.
तेजस्वि नावधतिम् अस्तु.
मा विद्विषावहै.
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ परमात्मा हमारी रक्षा करें!
वह हमारा पोषण करें.
हम दोनों अधिक उर्जा के साथ कार्य करें.
हमारा अध्ययन फलदायक हो और
हम दोनों में कभी भी वैमनस्य न हो.
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

केनोपनिषद् प्रारंभिक उपनिषदों में से एक है. इसका संबन्ध सामवेद से है जहां यह जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के अंतिम खण्ड में पाया जाता है. इसके अनुसार ब्रह्म से हमारी इन्द्रियों को उर्जा मिलती है. ब्रह्म अज्ञेय और ज्ञानातीत है. सभी कुछ ब्रह्म की शक्ति से ही चलता है. देवों को भी ब्रह्म से ही शक्ति से मिलती है. इसके कुल 36 मंत्र गद्य में हैं.

अध्याय १. ब्रह्म ज्ञान

१. शिष्य ने पूछा– ॐ! किसके आदेश से मन अपने लक्ष्य की ओर भागता है? किसके आदेश से प्राण अपना कार्य करता है ? किसकी इच्छा से सभी बोलते हैं? किसके इशारे पर आंख और कान अपना-अपना कार्य करते हैं?

ब्रह्म हमारी इन्द्रियों को शक्ति देता है

२. आचार्य ने उत्तर दिया–आत्मा की शक्ति से कान सुनता है, आंखें देखती हैं, जिह्वा बोलती है, मन सोचता है और प्राण अपना कार्य करता है. एक ज्ञानी व्यक्ति आत्मा और अनात्मा (शरीर, मन, इंद्रियों) के मध्य का अन्तर समझकर अमरत्व प्राप्त कर लेता है.

३-४. इसे न आंखें देख सकती हैं, न कान सुन सकता है और न ही मन समझ सकता है. न हम इसे समझ सकते हैं और न ही हम इसे किसी तरह समझा सकते हैं. यह सभी ज्ञात वस्तुओं से भिन्न है. यह अज्ञेय है. हमने अपने आचार्यों से इसके बारे में ऐसा ही सुना है और जाना है.

५. ब्रह्म उसी को जानो जो वाणी से अव्यक्त है, पर जिससे वाणी व्यक्त है. देवता को नहीं जिसे साधारण जनता पूजती है.

जन साधारण अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए जिन देवी-देवताओं को पूजते हैं, वे ब्रह्म नहीं हैं. भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! जो भक्त श्रद्धापूर्वक दूसरे देवी-देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं–पर अज्ञानपूर्वक. (भ.गी. ६.२३)

६. जो मन के द्वारा समझा नहीं जा सकता है, लेकिन जिसके द्वारा मन समझता है, केवल उसी को ब्रह्म जानो.

७. जो आंखों के द्वारा द्रष्टव्य नहीं है, पर जिसके द्वारा आंखें द्रष्टव्य हैं, उसी को ब्रह्म जानो. उसे नहीं जिसे साधारण जनता पूजती है.

८. जो कान के द्वारा श्रोतव्य नहीं है, पर जिसके द्वारा कान श्रोतव्य है, उसी को ब्रह्म जानो. उसे नहीं जिसे साधारण जनता पूजती है.

९. जो नासिका के द्वारा घ्राणमय नही है, पर जिसके द्वारा नासिका घ्राणमय है, उसी को ब्रह्म जानो. उसे नहीं जिसे लोग पूजते हैं.

अध्याय २. ब्रह्म अज्ञेय है

१. आचार्य ने कहा– यदि तुम सोचते हो कि मैं ब्रह्म को जानता हूं, तो निश्चित तौर पर तुम इसके विषय में बहुत कम जानते हो. तुम इसे केवल मानवीय मस्तिष्क के अनुसार जानते हो. इसलिए तुम्हें ब्रह्म के विषय में और आगे पूछना चाहिए.

२. शिष्य ने कहा– मुझे लगता है मेरा ब्रह्म के विषय में ज्ञान है, पर अल्प ज्ञान है. न तो मैं सोचता हूं कि इसे अच्छी तरह जानता हूं ओर न ही सोचता हूं कि इसे मैं नहीं जानता. वही ब्रह्म को जानता है जो समझता है कि "न तो मैं नहीं जानता और न ही मैं जानता हूं" *(जीवात्मा को ब्रह्म का अल्पज्ञान ही होता है)*

बुद्धिमान् से ब्रह्म अज्ञात होता है

३. आचार्य ने कहा--- जिसके द्वारा ब्रह्म नहीं जाना जाता, वही ब्रह्म को जानता है. जिसके द्वारा ब्रह्म जाना जाता है वह ब्रह्म को नहीं जानता है. जो इसे जानते हैं उनके लिए ब्रह्म अज्ञात है, जो इसे नहीं जानते उसी के लिए वह ज्ञात है.

ज्ञानियों के लिए ब्रह्म अज्ञात है, वह केवल अज्ञानियों के लिए ही ज्ञात है : अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातम् अविजानताम्.

४. ब्रह्म को तीनों चैतन्य अवस्थाओं (जाग्रत. स्वप्न और सुषुप्ति) के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में जानो. जो इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है उसमें सभी कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति आ जाती है. वह मृत्यु के भय से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है.

५. जिस भी व्यक्ति ने इस जीवन में आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया उसने जीवन का सही लक्ष्य प्राप्त कर लिया. **यदि उसने आत्मा को इस जीवन में नहीं जाना तो उसका नाश (पुनर्जन्म) निश्चित है. ज्ञानीजन आत्मा को सभी जीव में स्थित समझकर इस मायावी संसार का त्याग कर अमर हो जाते हैं.**

अध्याय ३. ब्रह्म विश्व संचालन करता है

सब कुछ ईश्वर की शक्ति से होता है

१. एक कथा के अनुसार, देवताओं के लिए ब्रह्म ने असुरों पर विजय प्राप्त की. ब्रह्म के इस विजय से देवगण अति प्रसन्न हुए. पर उन्होंने यह समझा कि निश्चित तौर पर यह विजय हमारी है, यह महिमा हमारी है.

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य स्वयं को ही कर्ता समझ लेता है (तथा कर्मफल की आसक्तिरूपी बन्धनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की कठपुतली मात्र है). (भ.गी. ३.२७) (भ.गी. ५.०६, १३.२६, १४.१६ भी देखें.)

२. देवगणों के अहंकार (*अहंकार वह अवस्था है जिसमें लोग ईश्वर की जगह स्वयं को ही सभी कार्य का कर्ता समझने लगते हैं*) से उत्पन्न गर्व को जानकर ब्रह्म उनके सामने एक यक्ष के रूप में प्रकट हुए, लेकिन देवगण यह नहीं जानते थे कि यक्ष कौन है?

३-६. देवगणों ने अग्निदेव से कहा—"हे अग्निदेव, यह पता लगाओ कि ये महात्मा कौन हैं." अग्नि ने कहा—"ठीक है" और वे जल्दी से यक्ष रूपी ब्रह्म के पास गये. ब्रह्म ने पूछा—"आप कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं अग्नि हूं." ब्रह्म ने पूछा—"आपमें कौन-सी शक्ति है?" अग्नि ने कहा—"मैं पृथ्वी पर सभी को जला सकता हूं." ब्रह्म ने उनके सामने एक सूखा तिनका रखकर कहा—"इसे जलाओ."

अग्निदेव ने पूरी कोशिश की पर वे उसे नहीं जला पाये. अग्निदेव वापस देवगणों के पास गये और बोले— "मैं नहीं जानता ये यक्ष कौन हैं."

७-१०. तब देवगणों ने वायुदेव से कहा—"हे वायुदेव, यह पता लगाओ कि ये महात्मा कौन हैं." वायु ने कहा—"ठीक है" और वे जल्दी से यक्ष रूपी ब्रह्म के पास गये. ब्रह्म ने पूछा—"आप कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं वायु हूं."

ब्रह्म ने पूछा—"किस शक्ति के कारण आप स्वयं को महान समझते हैं?"

उन्हों ने कहा–"मैं पृथ्वी पर जो कुछ भी है सभी को उड़ा सकता हूं." ब्रह्म ने उनके सामने एक सूखा तिनका रखकर कहा–"इसे उड़ाओ." वायुदेव ने पूरी कोशिश की पर वे उसे नहीं उड़ा पाये. वायुदेव वापस देवगणों के पास गये और बोले– "मैं नहीं जान सका ये महात्मा कौन हैं."

११-१२. तब देवताओं ने देवराज इन्द्र से कहा–"हे इन्द्र भगवान् , अब आप ही पता करो कि ये महात्मा कौन हैं." इन्द्र ने कहा–"ठीक है." और वे जल्दी से यक्ष रूपी ब्रह्म के पास दौड़े. लेकिन तभी वह महान आत्मा अदृश्य हो गये. उनकी जगह पर इन्द्र ने एक सुन्दर नारी के रूप में देवी उमा को देखा. इन्द्र ने उनके पास जाकर पूछा–"माते, वे महात्मा कौन थे?"

अध्याय ४. ब्रह्म की महिमा

देवताओं को ब्रह्म से शक्ति मिलती है

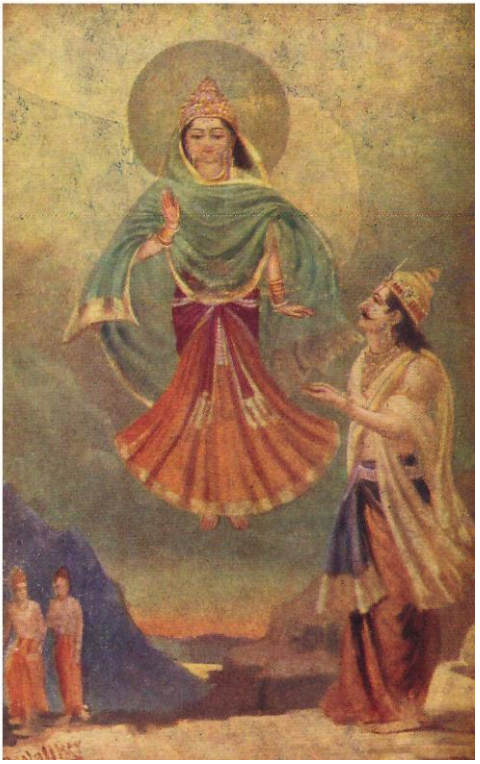

इन्द्र को देवी द्वारा ब्रह्म ज्ञान प्रदान

१. माता ने इन्द्र को विस्तारपूर्वक बताया—"वे ब्रह्म थे. आप लोगों को ब्रह्म की जीत से ही कीर्ति मिली है." इन्द्र को अपनी गल्ती का अहसास हुआ और उन्होंने जाना कि वे महात्मा स्वयं परब्रह्म ही थे.

२. चूंकि देवगण उनके पास गये थे और उन्होंने सबसे पहले ब्रह्म को जाना इसलिए वे तीनों—अग्नि, वायु और इन्द्र—अन्य देवताओं में उत्कृष्ट हूए.

३. चूंकि इन्द्र ब्रह्म के सबसे करीब गये और ब्रह्म की वास्तविकता जानने वाले वे पहले देव थे, इसलिए इन्द्र सभी देवताओं के राजा हूए.

४. देवताओं के संदर्भ में ब्रह्म की यही व्याख्या है—देवताओं को सभी शक्तियां ब्रह्म से ही मिली है. विश्व की सभी गति, शक्ति, और प्राण के पीछे ब्रह्म है.

५. अब जीवात्मा के संबंध में ब्रह्म की व्याख्या करते है. **ब्रह्म के कारण ही मन बाह्य जगत् के विषय में सोचता है, समझता है और जानता है.**

६. चूंकि ब्रह्म सर्वप्रिय है इसलिए सभी को इसकी आराधना करनी चाहिए. **जिसने भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है, वे इससे प्रेम करते हैं और इसकी आराधना करते हैं.**

७. शिष्य ने कहा—"आचार्य! आप मुझे उपनिषद् सीखायें." आचार्य ने कहा—"मैंने तुम्हें अभी ब्रह्मोपनिषद् के विषय में बताया है." पुनः मैं कहता हूं.

८. आत्म-संयम, आत्म-निग्रह और तप इसके पैर हैं, चारों वेद इसके अंग हैं, और ज्ञान ही इसका आवास है.

९. जिसके पास भी इस उपनिषद् का ज्ञान है, उसके सभी पाप धुल जाते हैं और वह पूर्णतः स्थिर होकर मानव-जीवन का प्रमुख लक्ष्य प्राप्त कर लेता है.

ॐ तत् सत्

३. कठोपनिषद्

यह उन प्रारंभिक उपनिषदों में से एक है जिसका संबंध कृष्ण यजुर्वेद के साथ माना जाता है. इसमें कुल ११६ श्लोक हैं.

अध्याय १. नचिकेतोपाख्यान

खण्ड १. नचिकेता को मृत्यु का डर नहीं है.

१. स्वर्ग की कामना रखते हुए मुनि वाजश्रवा ने विश्वजीत यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें उन्होंनें अपनी सभी संपत्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा-दान रूप में दे डाली. उनका नचिकेता नामक एक पुत्र था.

२-३. जब ये उपहार दिये जा रहे थे तो नचिकेता, जो अभी बालक मात्र था, की आस्तिक बुद्धि ने सोचा: जिस किसी भी लोक में उसके पिता जायेंगे वह तो नीरस होगा, क्योंकि ये गाएं न तो खा सकती हैं, न पी सकती हैं, न दुध दे सकती हैं, और न ही बच्छड़े दे सकती हैं.

नचिकेता की अपनी पिता के प्रति सच्ची संवेदना थी. इसलिए उसने अपने पिता को अनिष्ट से बचाने के लिए अपने आप को ही दान की सही वस्तु के रूप में समर्पित कर दिया. उसने अपने पिता से कहा :

४. पिताजी आप मुझे किसे दान दे रहे हैं? उसने यही प्रश्न दो-तीन बार उनसे पूछा. तब उसके पिता ने क्रोधित होकर कहा—जा मैं तुझे मृत्यु को दान देता हूँ.

५. नचिकेता ने सोचा : पिता को समर्पित लोगों (पुत्रों या शिष्यों) में मेरा आचरण या तो प्रथम श्रेणी का है या मध्यम श्रेणी का है. लेकिन अधम श्रेणी का तो अवश्य ही नहीं है. तो फिर किस प्रकार मेरे जैसे बालक का दान करके पिताजी यमराज के किस कार्य की सिद्धि कर रहे हैं?

६. (क्रोध समाप्त होने पर अपने पिता के द्वारा पश्चाताप किये जाने पर नचिकेता ने उनसे कहा) पूर्व में दृष्टिपात कीजिए कि किस प्रकार हमारे पूर्वजों ने अपनी प्रतिज्ञाओं का सम्मान किया है. मरणशील मनुष्य तो फसल की तरह पकते हैं और गिरकर पुनः उत्पन्न हो जाते हैं. इस प्रकार सोचते हुए नचिकेता ने यम के पास जाने का निर्णय किया.

नचिकेता के पिता उसका कभी भी त्याग नहीं करना चाहते थे फिर भी अपने पिता के वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिए नचिकेता ने पिता से यमलोक जाने के लिए उन्हें राजी कर लिया.

यमद्वार पर नचिकेता की प्रथम परीक्षा

जब नचिकेता मृत्युदेव के द्वार पर पहुंचा तो यमदेव अपने घर पर अनुपस्थित थे. नचिकेता ने उनके द्वार पर तीन दिनों तक उपवास करते हुए उनकी प्रतीक्षा की. वापस आने पर यमराज ने नचिकेता से कहा :

७. कोई भी ब्राह्मण अतिथि अग्नि के रूप में घरों में प्रवेश करता है. इसलिए एक गृहस्थ उसे शांत करने के लिए पानी और विश्रामस्थल देता है.

८. यदि कोई ब्राह्मण किसी गृहस्थ के घर से भोजन रहित चला जाता है तो उस मंदबुद्धि के आशाओं और आकांक्षाओं, उसके सत्संगति, मधुर वचनों, यज्ञों और सत्कार्यों के फलों, उसके पुत्रों एवं समस्त पशुधनों का भी सर्वनाश हो जाता है.

नचिकेता को तीन वरदान

९. नचिकेता के दृढ़ संचय से यम ने अति प्रसन्न होकर कहा : हे ब्राह्मण, आपको नमस्कार है. आप हमारे आदरणीय अतिथि हैं फिर भी आपको मेरे घर पर तीन दिनों तक उपवास करना पड़ा, इसके प्रायश्चित रूप में तीन रात्रि के लिए मैं आपको तीन वरदान देता हूं.

नचिकेता की पहली इच्छा कि पृथ्वी पर उसके पिता संतुष्ट हों

१०. नचिकेता ने कहा : हे यमराज! मैं अपने प्रथम वर के रूप में यही मांगता हूं कि मेरे पिता (गौतमवंशीय उद्दालक) मेरे प्रति शांत, प्रसन्नमुख और क्रोधरहित हो जाएं. आपके द्वारा पृथ्वी पर वापस भेजे जाने पर वे मुझे (मनुष्य योनि में ही) पहचानें (भूत की तरह नहीं) और मेरा स्वागत करें.

११. यमराज ने कहा : मेरे अनुग्रह से तुम्हारे लौटने पर तुम्हारे पिता तुम्हें पहचान लेंगे और तुम्हारे प्रति उनका स्नेह पहले की तरह ही होगा. तुम्हें मृत्यु के मुख से मुक्त देखकर वे भयरहित होकर आराम से रात्रि में शयन करेंगे.

नचिकेता की दूसरी इच्छा याज्ञिक अग्नि को समझना

१२. नचिकेता ने कहा : स्वर्ग में किसी को मृत्यु से भय नहीं है और कोई वृद्धावस्था से घबराता भी नहीं है. वहां प्रत्येक प्राणी भूख-प्यास की चिन्ता से मुक्त, दुःखों से दूर रहकर आनंदित होता रहता है.

१३. हे यमराज! आप तो उस स्वर्ग प्राप्ति के साधन स्वरूप अग्नि-यज्ञ को अवश्य जानते हैं. मुझे इसके विषय में बतायें जिसे जानकर स्वर्ग-प्राप्ति करनेवाले अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं. मैं इसी अग्नि-विद्या को अपने दूसरे वर के रूप में मांगता हूं.

१४. यम ने उत्तर दिया : मैं अग्नि यज्ञ को जानता हूं और इसके विषय में तुम्हें अवश्य बताउंगा, ध्यान से सुनो. इसे स्वर्ग प्राप्ति का साधन समझो. संपूर्ण विश्व का आधार यही है. इसे जानने वाले विद्वानों की बुद्धि रूपी गुहा में इसका वास होता है.

१५. यम ने तब उसे उस अग्नि के विषय में बताया जो संपूर्ण विश्व का स्रोत है. उन्होंने यह भी बताया कि यज्ञ-वेदी में किस तरह की और कितनी ईंटें प्रयोग में लानी चाहिए और किस प्रकार यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की जानी चाहिए. नचिकेता को जो भी बताया गया उसने सभी कुछ स्मरण कर उन्हें पुनः सुना दिया. तब यमराज ने उससे अति प्रसन्न होकर पुनः कहा–

१६. मैं तुम्हें (तुम्हारी प्रतिभा से प्रसन्न होने के कारण) एक और वरदान देता हूं कि इस अग्नि को लोग अब तुम्हारे नाम से जानेंगे. अब मेरे हाथों से ये सुन्दर हार ग्रहण करो!

१७. जो कोई भी इस नाचिकेत यज्ञ को तीन बार संपन्न करता है, उसे तीनों वेदों के अध्ययन का फल मिलता है. वह अपने तीनों कर्तव्यों (धर्म, अर्थ और काम) का निर्वहण करते हुए जन्म और मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाता है. वह सर्वज्ञ, प्रकाशमय और पूजनीय ब्रह्म से उत्पन्न इस अग्नि-यज्ञ को जानकर परम शांति को प्राप्त करता है.

१८. जिस किसी ने भी इस नाचिकेत यज्ञ का आयोजन तीन बार किया है वह इस जीवन के सभी दुःखों से एवं मृत्यु के भय से मुक्त होकर स्वर्ग में आनंद करता है.

१९. है नचिकेता! तुमने अपने दुसरे वरदान के रूप में जिसे चुना है वह अग्नि यज्ञ ऐसा ही है जिसे पूर्ण करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है. लोग अब इसे तुम्हारे नाम से जानेंगे. हे नचिकेता! तुम अब अपने तीसरे वर के विषय में पूछो.

मृत्यु के पश्चात् जीवन के ज्ञान के रूप में नचिकेता की तीसरी इच्छा

२०. नचिकेता ने पूछा : जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो यह संशय बना रहता है. कुछ (वेदवेता एवं आस्तिक) कहते हैं कि उसका अस्तित्व बना रहता है, कुछ (नास्तिक) कहते हैं कि वह अस्तित्वविहीन होता है. सत्य क्या है? मैं आपसे जानना चाहता हूं. मुझे तीसरे वर के रूप में यही ज्ञान चाहिए.

नचिकेता की यम द्वारा पुनर्परीक्षा

२१. यमराज ने कहा : पूर्व में इस विषय के संबंध में देवताओं के मध्य भी संदेह था. इसे आसानी से नहीं समझा जा सकता. आत्मा का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म है. इसलिए हे नचिकेता! कोई अन्य वर मांगो. मुझ पर दवाब मत डालो. मुझे इस वर से मुक्त करो.

२२. तब नचिकेता ने आगे कहा : आपके अनुसार देवताओं को भी इस विषय में संदेह है और इसे आसानी से नहीं समझा जा सकता. लेकिन आपके अतिरिक्त इस विषय को समझानेवाला कोई अन्य आचार्य (उपदेष्टा) भी आसानी से नहीं मिल सकता.

२३. यमराज ने कहा : मुझसे शतायु पुत्र-प्रपौत्र मांगो. हाथी, घोड़े, पशु और सोने मांगो. इस पृथ्वी का विस्तृत भू-भाग मांगो. जितने वर्ष जीना चाहो, उतनी आयु मांगो.

२४. यदि तुम्हें इसी समान कोई अन्य वर लगता हो तो वह मांगो. धन और लंबी आयु मांगो. हे नचिकेता! इस विशाल पृथ्वी का राजा बनो. मेरी आज्ञा से तुम सभी सुख भोग सकते हो.

२५. इस संसार में एक मरणशील मनुष्य के लिए जो भी इच्छा दुर्लभ है, तुम उसे अपनी चाहत के अनुसार मांग सकते हो, जैसे--- सुंदर नारी, रथ, वाद्ययंत्र आदि. मैं तुम्हें वह सब कुछ दूंगा जो भी कुछ तुम चाहोगे. पर मुझसे मृत्यु के विषय में कुछ मत पूछो.

२६. नचिकेता ने कहा : हे यमराज! ये सभी भोग की वस्तुएं क्षणिक हैं, साथ ही ये सभी इन्द्रियों के तेज को थकाने वाली हैं. इनके लिए दीर्घतम आयु भी कम है. इसलिए ये घोड़े, ये नृत्य-गीत सभी अपने पास ही रखें.

२७. कोई भी व्यक्ति धन से संतुष्ट नहीं होता और वास्तव में चूंकि मुझे आपके दर्शन हो गए हैं इसलिए मुझे अपने आप ही धन प्राप्त हो गया है. जब तक आप रहेंगे तब तक मैं जिंदा रहूंगा. इसलिए मैंने जो वर मांगा है उसके सिवा कुछ और नहीं मांगूगा.

२८. मरणशील व्यक्तियों में से कौन है जो अविनाशी के पास पहुंचकर दीर्घायु की इच्छा रखेगा? कौन सौंदर्य और संगीत के क्षणिक सुख के पीछे भागेगा?

२९. हे यमराज! मुझे मृत्यु के पश्चात् जीवन के विषय में बतायें, जिसके संबंध में व्यक्ति के मन में संशय होता है. मैं इस अबोधगम्य विषय के अतिरिक्त अपने वर के रूप में कुछ और नहीं चाहता.

खण्ड २. पुरुषोत्तम का अस्तित्व

नचिकेता परीक्षा में उतीर्ण हुआ

१. श्रेयस (जो बातें हितकारी हैं) और प्रेयस (जो बातें इन्द्रियों को अच्छी लगती हैं) दोनों का महत्त्व है, पर दोनों ही भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और मनुष्य को बंधन में डालती हैं. सौभाग्यशाली वे हैं जो हितकारी बातों को चुनते हैं. जो प्रेयस बातों को महत्त्व देते हैं वे मानवीय जीवन के लक्ष्य को भूल जाते हैं.

आत्मज्ञान का मार्ग हितकारी है और भौतिक एवं सांसारिक भोगों का मार्ग हानिकारक है. किसी भी प्रकार की इच्छा बंधन है. इस प्रकार दोनों ही—इंद्रियों का आनंद और मुक्ति—एक

प्रकार से बंधन है. यद्यपि मुक्ति अति आवश्यक है, क्योंकि यह लोगों को मोह के बंधन से मुक्त करता है.

इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सुखों का आदि और अन्त होता है तथा वे (अन्त में) दुःख के कारण होते हैं. इसलिए, हे कौन्तेय! बुद्धिमान् मनुष्य उनमें आसक्त नहीं होते. (भ.गी. १८.३८ भी देखें.) (भ.गी. ५.२२)

ऐसे आत्मबुद्धिरूपी प्रसाद से उत्पन्न सुख को जो आरम्भ में विष की तरह, परन्तु परिणाम में अमृत के समान होता है सात्त्विक सुख कहते हैं. (भ.गी. १८.३७)

इन्द्रियों के भोग से उत्पन्न सुख को जो भोग के समय तो अमृत के समान लगता है, परन्तु जिसका परिणाम विष की तरह होता है, उसे राजसिक सुख कहा गया है. (भ.गी. ५.२२ भी देखें.) (भ.गी. १८.३८)

जो बुद्धिमान हैं वे हमेशा सांसारिक वासनाओं की व्यर्थता को समझते हैं, क्योंकि यह अंततः दुःख का ही कारण बनता है. इसलिए वे सांसारिक भोग-विलास के शिकार नहीं बनते हैं.

जिस किसी ने भक्ति के सागर में गोता लगा लिया, उसके लिए सांसारिक वासनाएं तालाब के पानी की तरह है. भौतिक आनंद बरसाती नदी की तरह होती है जो शीघ्र ही सूख जाती है, क्योंकि उसमें आध्यात्मिक जल बरसाने वाला कोई चिरस्थायी स्रोत नहीं होता है. एक आत्मज्ञानी व्यक्ति के लिए भौतिक वस्तुएं सूखे तिनके की तरह होती हैं.

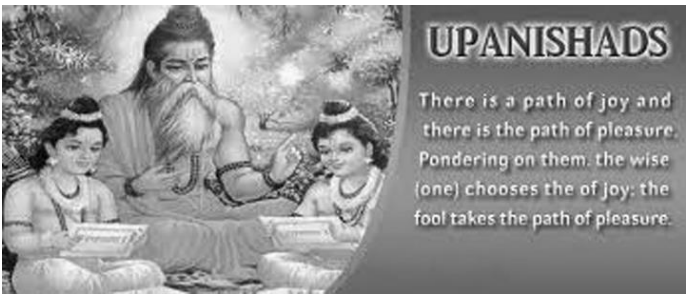

२. हितकारी (श्रेयस) और सुखकर (प्रेयस) दोनों वस्तुएं एक व्यक्ति के सामने उपस्थित होती हैं. धीरात्मा (उत्तम अधिकारी की तरह) उनका अच्छी तरह से परीक्षण करते हैं और रमणीयता की अपेक्षा हितकारी को ज्यादा महत्त्व देते हैं. लेकिन जो मंद बुद्धि होते हैं वे लोभ और आसक्ति के कारण सुखकर को चुनते हैं.

३. हे नचिकेता! तुमने अच्छी तरह सोच-विचारकर सभी सुखकर और आकर्षक वस्तुओं का त्याग कर दिया है. तुमने विलासिता के उस पथ को नहीं चुना है जिस पर चलकर अज्ञानी जन नष्ट हो जाते हैं.

४. भौतिक एवं लौकिक सुखों (अविद्या) का रमणीय मार्ग और ज्ञान एवं मोक्ष (विद्या) का मार्ग—दोनों अलग-अलग दिशाओं की ओर जाते रास्ते हैं. हे नचिकेता! एक ज्ञानार्थी के रूप में मैं तुम्हारा सम्मान करता हूं क्योंकि अनेक भौतिक सुख भी तुम्हें लुभा नहीं सके.

५. अविद्या और अज्ञान के अंधकार में डूबे इन विद्वानों को, जो अपने आप को बुद्धिमान् मानते हैं, कुटिल मार्ग पर चलते हुए (अपने बुरे कर्मों के कारण) जीवन-मृत्यु के कई चक्रों को पार करना पड़ता है. वे अपने जीवन के लक्ष्यों को भूल कर उसी प्रकार कष्ट भोगते जाते हैं जिस प्रकार कोई अंधा किसी अन्य अंधे को रास्ता दिखा रहा हो.

वे कामनाओं से युक्त, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ माननेवाले, भोग और धन को प्राप्त करानेवाले अनेक धार्मिक संस्कारों को बताते हैं, जो पुनर्जन्मरूपी कर्मफल को देनेवाले होते हैं. (कठ.उ. २. ०५, ईशा.उ. ०६ भी देखें.) (भ.गी. २.४३)

६. एक अविवेकी, लापरवाह और संपत्ति के मोह में किंकर्तव्यविमूढ़ पुरुष को आत्मा का रहस्य कभी नहीं पता लगता. उन्हें इस लोक के अतिरिक्त (स्वर्गलोक या नरकलोक) कुछ भी नहीं दिखता. ऐसे मनुष्य प्रत्येक जन्म में मेरे वश में (मृत्यु-मुख में) होते हैं.

७. ऐसे कई मनुष्य हैं जिन्होंने कभी आत्मा के बारे में सुना ही नहीं है. कई ऐसे भी हैं, जिन्होंने इनके बारे में सुना है पर वे इसे नहीं समझते हैं. इस आत्म-तत्त्व का वक्ता या उपदेष्टा भी विरला होता है और इसे समझनेवाला (या आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार करनेवाला) शिष्य भी दुर्लभ अर्थात् आश्चर्यजनक होता है.

८. किसी अयोग्य शिक्षक के द्वारा सिखाये जाने पर कोई आत्मा के बारे में जान नहीं सकता. इसके बारे में लोग अनेक प्रकार के वाद-विवाद और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं. लेकिन यदि यह उनके द्वारा सिखाया जाता है जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार किया है तो मन में कोई संशय नहीं रहता. **आत्मा सूक्ष्म (अणु) से भी सूक्ष्मतर है, इसलिए यह तर्क का विषय नहीं है. लेकिन निष्कपट जिज्ञासा और चिंतन से इसके विषय में अवश्य जाना जा सकता है.**

९. आत्म-ज्ञान को कभी भी तर्क-वितर्क से नहीं जाना जा सकता. लेकिन किसी विवेकी आचार्य के द्वारा बताये जाने पर इसके बारे में आसानी से जाना जा सकता है. तुमने इस ज्ञान को प्राप्त कर लिया है. तुम वास्तव में दृढ़-प्रतिज्ञ हो. तुम्हारे जैसा जिज्ञासु व्यक्ति हमें हमेशा मिले यही हमारी इच्छा है.

संन्यास और साधना दोनों आवश्यक

१०. यमराज ने कहा : मैं जानता हूं कि कर्म-फल (जैसे कि नाचिकेत-यज्ञ और अन्य धार्मिक अनुष्ठान) शाश्वत नहीं है, **क्योंकि अनित्य संसाधनों से नित्य और शाश्वत**

आत्मा कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती है. फिर भी मैंने अनित्य संसाधनों (जैसे, पशु, द्रव्यादि) की सहायता से नाचिकेत-यज्ञ का चयन करके इस सापेक्षिक नित्य (relatively eternal) यम-पद को प्राप्त किया है.

११. सभी कामनाओं की पूर्ति—विश्व का आधार, यज्ञ का फल, मृत्यु के भय से मुक्ति और असीम स्वर्गिक आनंद आदि—तुमने इन सभी को देखा है और बुद्धिमान् होने के कारण तुमने इन सभी को दृढ़ता से नकार दिया है.

१२. एक बुद्धिमान् व्यक्ति ब्रह्मविचार और साधनोपरांत—उस प्राचीन, देदीप्यमान, उज्जवल, अप्रकट, कठिनता से दृष्ट (माया के आवरण से आवृत होने के कारण) और बुद्धिरूपी गुहा में वास करनेवाले परम आत्म-तत्त्व को जानकर—हर्ष और विषाद दोनों का त्याग कर देता है.

१३. जो पुरुष यह सब कुछ सुनकर, इस आत्मा के संबंध में मनन एवं निदिध्यासन कर, इसका साक्षात्कार कर आनंदित होता है, उसने वह सब कुछ प्राप्त कर लिया है जो परमानंद का स्रोत है और ब्रह्म का वास है. मैं तुम्हें इसी सर्वोच्च ब्रह्म स्थान के लिए उपयुक्त मानता हूं.

१४. नचिकेता ने कहा : आप मुझे उस आत्म-तत्त्व के संबंध में सब कुछ बताएं जो धर्म और अधर्म से परे, इस कार्य-कारण जगत् से अलग और भूत-भविष्यत् से पृथक् है.

ॐ ब्रह्मस्वरूप है

१५. यमराज ने कहा—जिसे वेदों में भी लक्ष्य माना गया है, जो सभी तापसिक कर्मों का फल है. जिसके बारे में ब्रह्मचर्य में लीन सभी मनुष्य सोचते हैं. संक्षेप में वह ॐ (प्रणवरूप) ही है.

१६. यह एकाक्षर ॐ वास्तव में ब्रह्म है. यह उच्चतम मात्रा है. जो भी इस अक्षर को जानता है वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है जो वह चाहता है.

१७. ॐ आत्म-ज्ञान का सबसे बड़ा साधन है. जो भी इस ॐ (प्रणवरूप) का अवलम्बन करता है उसकी समस्त ब्रह्मलोक में आराधना होती है.

आत्मा शाश्वत और अविनाशी है

१८. इस बात को जानो कि आत्मा का न तो कोई जन्म होता है और न यह कभी मरता है. इसका न तो किसी से जन्म हुआ है और न ही इससे किसी का जन्म होता है. यह अजन्मा, शाश्वत, अनंत और प्राचीन है. जब शरीर का नाश हो जाता है, तब भी इसका नाश नहीं होता.

नित्य, चैतन्य रूप आत्मा का न तो कोई जन्म होता है और न ही इसका किसी समय अंत होता है. न तो संसार में इसका आगमन होता है और न ही इसका कभी अस्तित्व समाप्त होता है. यह अजन्मा, चिरंतन, स्थायी और अनादि है. जब शरीर क्षीण हो जाता है तब भी आत्मा नष्ट नहीं होती.

१९. यदि हन्ता सोचता है कि वह आत्मा को मारने में समर्थ है और मरनेवाला आत्मा को मरा हुआ मानता है तो दोनों के पास सही बातों का ज्ञान नहीं है. आत्मा न तो मारता है और न ही मारा जा सकता है.

यमराज आत्मा की नित्यता के संबंध में कहते हैं कि वह जो सोचता है कि आत्मा हन्ता है या वह जो मानता है कि आत्मा मर सकता है, दोनों ही अज्ञानी हैं, क्योंकि हनन क्रिया आत्मा का धर्म नहीं है, वह न तो मारती है और न ही मरती है.

ब्रह्म के लक्षण

२०. आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और यह वृहत् से भी वृहतर है. यह सभी जीवित व्यक्तियों के हृदय में छुपी है. एक निष्काम पुरुष विवेक से आत्मा की नित्यता एवं महिमा को समझकर शोकरहित हो जाता है.

२१. स्थिर होते हुए भी यह दूर तक जाता है. शयन करते हुए भी यह सभी ओर जाता है. एक महात्मा के अलावा इस ज्योतिर्मय प्रदीप्त आत्मा को कौन समझ सकता है कि जो जीव के रूप में हर्षित होता है पर साक्षी रूप में कभी उन्मत्त नहीं होता.

२२. एक विवेकी पुरुष सभी जीवों के अनित्य शरीर में अवस्थित देहविहीन, महान, अमर और सर्वव्यापक आत्मा को जानते हुए कभी शोक नहीं करता.

भगवान् कृष्ण कहते हैं : तुम उनके लिए शोक मनाते हो जो शोक के लायक नहीं हैं, फिर भी विवेक की बातें करते हो. जबकि धीर पुरुष न तो जीवित और न ही मृत व्यक्ति के बारे में शोक करता है.

ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के आवश्यक गुण

२३. आत्मा का ज्ञान वेदों के अध्ययन, बुद्धिमता या धार्मिक ग्रंथों के पाठ से नहीं आता. यह उसी को आता है जो आत्मा द्वारा वरण किया जाता है (जो इसके योग्य होता है). ऐसे ही साधक के समक्ष आत्मा अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट करती है.

हे अर्जुन! मेरे इस चतुर्भुज रूप को जो तुम देख रहे हो वह वेदों के अध्ययन, तपस्या या दानवीरता या धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा नहीं देखा जा सकता. (भ.गी. ११.५३). लेकिन दृढ़ भक्ति के द्वारा मेरे इस स्वरूप को देखा और जाना जा सकता है और मुझ तक पहुंचा भी जा सकता है (भ.गी. ११.५४).

२४. जिसने पापकर्म का त्याग नहीं किया है, और जो असंयमित, आत्मचिंतन रहित और जिसका मन अशांत है, वह ब्रह्म ज्ञान के द्वारा भी इसे प्राप्त नहीं कर सकता है.

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है

२५. जिनके लिए सभी धर्मों के धारक ब्राह्मण एवं सभी के रक्षक क्षत्रिय भी भोजन की तरह हैं और मृत्युदेव चटनी की तरह. उसे कोई कैसे जान सकता है कि वे कहां हैं (इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान् है).

खण्ड ३. साधना

सर्वव्यापी एवं व्यक्तिगत आत्मा

१. ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष के अलावा वे गृहस्थ जिन्होंने पंचाग्नियों में आहूतियां दी हैं और वे लोग भी जिन्होंने तीन बार नाचिकेत यज्ञ का आयोजन किया है—वे परमात्मा को धूप और जीवात्मा को उसकी छाया के रूप में देखते हैं. इनके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक ही शरीर में वास करते हैं जबकि जीवात्मा अपने कर्मों का फल भुगतता रहता है.

नाचिकेत यज्ञ साधन के रूप में

२. नाचिकेत अग्नि याज्ञिकों के लिए स्वर्ग के सेतु के समान है और हमें इसके आयोजन के विषय में ज्ञान है. हम उस अविनाशी परम ब्रह्म को भी जानते हैं जिसके विषय में आध्यात्मिक संसार-समुद्र को पार कर भय-रहित पद की इच्छा रखनेवाले जानना चाहते हैं.

रथ में बैठे जीव की गृह की ओर यात्रा

३. इस बात को समझो कि परमात्मा ही रथ का स्वामी है. जबकि जीवात्मा या जीव रथ में एक यात्री के रूप में है. शरीर एक रथ की तरह है. बुद्धि सारथी है. सुनियंत्रित मन लगाम की तरह है.

४. ज्ञानी कहते हैं कि इंद्रियां घोड़े की तरह हैं. जबकि रूप-रसादि विषय मार्ग हैं. शरीर, इन्द्रिय और मन से युक्त (सुख-दुख का अनुभव करनेवाला) जीवात्मा को विवेकी पुरुष भोक्ता मानते हैं.

५. यदि किसी का मन वश में नहीं है और वह विवेकहीन है तो उसकी इंद्रियां अनियंत्रित हो जाती हैं, किसी सारथी के दुष्ट घोड़े की तरह.

६. लेकिन जिसका अपने मन पर नियंत्रण है और जो विवेकशील है उसकी इंद्रियों के उपर किसी सारथी के प्रशिक्षित घोड़े की तरह नियंत्रण होता है.

नोट १: इंद्रियों को नियंत्रित करने के लिए मन बागडोर की तरह है. लेकिन सबल बुद्धिजनों के लिए मन को नियंत्रित रखना आवश्यक है. एक नियंत्रित मन ही इंद्रियरूपी घोड़े का संचालन कर सकता है.

मन पर नियंत्रण आवश्यक है

७. जो ज्ञानहीन, विवेकहीन एवं अशुद्ध है, वह कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचता, वरन् मृत्यु और जन्म के चक्र में प्रवेश कर जाता है.

८. लेकिन जो बुद्धिमान्, शुद्ध अंतःकरण वाले होते हैं और जिनका अपने मन पर नियंत्रण होता है वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होकर अपने लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं.

९. विष्णु के परम पद को वही प्राप्त कर सकता है, जिसका सारथी शुद्ध बुद्धिवाला और सुनियंत्रित मन वाला होता है.

परम लक्ष्य तक पहुंचने का क्रम

१०-११. (श्रोत्रादि) इंद्रियों से श्रेष्ठ (उनके शब्दादि) विषय हैं. विषयों से श्रेष्ठ (या सूक्ष्म) मन है. मन से श्रेष्ठ बुद्धि है. बुद्धि से श्रेष्ठ ज्ञान है और ज्ञान से श्रेष्ठ ब्रह्म है. ब्रह्म से श्रेष्ठ परब्रह्म है (जो कि पूर्ण पुरुष है). इस पूर्णता के आगे कुछ भी नहीं है. यही अंतिम है, परम लक्ष्य है (श्लोक १.६.०७-०८ भी देखें).

योग के प्रकार

१२. आत्मा सभी जीवों के अन्दर स्थित होते हुए भी, अविद्या से आच्छादित होने के कारण, प्रकाशित नहीं होता. यह केवल सूक्ष्म बुद्धिवाले एकाग्रचित् महात्माओं द्वारा ही देखा जा सकता है.

१३. एक विवेकी पुरुष को अपनी वाणी आदि समस्त इंद्रियों को मन में और अपने मन को बुद्धि में विलीन करनी चाहिए. पुनः उस बुद्धि को अपने कार्मिक मन में और कार्मिक मन को आत्मा में डूबो देना चाहिए.

यह उद्धरण यौगिक प्रक्रिया, संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) द्वारा, आत्मा के द्वारा मन को डूबो देनी वाली यौगिक विधि के संबंध में है.

मृत्यु से मोक्ष प्राप्ति के विषय में

१४. उठो! जागो! सद्गुरु के पास जाओ और सीखो! महात्मा लोग इसके विषय में कहते हैं कि यह मार्ग तलवार के तीव्र धार पर चलने के समान अर्थात् कठिनता से प्राप्त करने योग्य है.

आध्यात्मिक मार्ग तीव्र फिसलन वाला पथ है इसलिए पतन से बचने के लिए संभलकर चलना पड़ता है. यह कोई आनंदमयी नौका-विहार नहीं, वरन् तलवार के धार पर चलने के समान कठिन है.

१५. उस परम आत्मतत्त्व को ध्वनिहीन, स्पर्शहीन, अनाकार, अविनाशी, स्वादहीन, शाश्वत, गंधहीन, अनादि और अनंत रूप जानने के बाद साधक मृत्यु के पंजे से छूट जाता है.

इस शिक्षा के अमर तत्त्व

१६. जो व्यक्ति नचिकेता के इस प्राचीन कथा को, जैसा यमराज ने कहा है, सुनता या सुनाता है उसकी समस्त ब्रह्म लोक में कीर्ति होती है.

१७. और वह जो आत्म-नियंत्रण रखते हुए इस परम गुह्य विषय को भक्तों की सभा में या श्राद्ध-काल में गुणगान करता है वह अमरत्व प्राप्त करता है.

खण्ड ४. अंतरात्मा

आत्मा को इंद्रियों से नहीं देखा जा सकता

१. यमराज ने कहा : स्वयंभू परमेश्वर ने इंद्रियों को ऐसा बनाया है कि वे बहिर्मुखी होती हैं इसलिए मनुष्य केवल बाह्य विश्व को देखता है, आंतरिक नहीं. लेकिन वे ज्ञानी पुरुष जो अमरत्व चाहते हैं, लुभानेवाली वस्तुओं से ध्यान हटाकर अपनी इंद्रियों को अंतरात्मा की ओर प्रेरित करते हैं.

२. जो अज्ञानी हैं वे बाह्य सुखों की ओर आकर्षित होते हैं, जिससे वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु जाल में फंस जाते हैं. लेकिन जो ज्ञानी होते हैं वे अपने विवेक के द्वारा क्षणिक वस्तुओं के मध्य अमरत्व को पहचानकर इस दुनिया में कुछ भी नहीं चाहते हैं.

आत्मा तीनों अवस्थाओं, सभी इंद्रियों में कार्य करती है

३. आत्मा के द्वारा ही सभी रूप, स्वाद, गंध, श्रवण, स्पर्श और संभोग सुख को पहचानते हैं. आत्मा से कुछ भी अनजान नहीं है. वह सर्वज्ञाता है, जिसके विषय में तुम जानना चाहते हो.

४. आत्मा के द्वारा ही कोई सुषुप्तावस्था या जाग्रतावस्था में सभी वस्तुओं को पहचानता है. इस विशाल, सर्वव्यापी आत्मा को जानने के पश्चात् ज्ञानी पुरुष शोक नहीं मनाता.

परमात्मा एवं जीवात्मा एक ही है

५. जो इस आत्मा को जीव के रूप में अपने कर्मों के फलों का भोक्ता, इस जीवन को धारण करनेवाला और भूत, भविष्य एवं वर्तमान का स्वामी और जो सभी में है—ऐसा मानता है उसे किसी का डर नहीं होता.

६. जो यह जानता है कि सृष्टि के आविर्भाव (रचना) के पूर्व में भी ब्रह्म था और पंचतत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं सूक्ष्म आकाश) से निर्मित इस शरीर के अंदर भी वास करता है—यह वही (परमात्मा है जिसके विषय में तुमने पूछा) है.

७. जो देवताओं की आत्मा में—प्राण-रूप से अपने पांचों घटकों (components) के साथ प्रकट है—वह हृदय-रूपी गुहा में प्रवेश करके वहीं वास करता है. जो इस यथार्थ को जानता है, यह वही है.

८. माता के गर्भ में पलते रहे बालक की तरह **अग्नि**---काठ में छिपि एवं पूरी तरह से सुरक्षित---यज्ञ में हवन किये जाते हुए ज्ञानियों के द्वारा पूजित होता है, यह वही है.

९. विश्व का जहां से आविर्भाव होता है, उसी में उसका पुनः विलय हो जाता है. इसी पर सभी देवता निर्भर करते हैं और इससे कोई पार नहीं पा सकता. यह वास्तव में वही है.

पुनर्जन्म का कारण

१०. जो कुछ (परब्रह्म) यहां है, वही वहां (परलोक में) है और जो कुछ वहां है, वही यहां है. जो इस जगत् और ब्रह्म में अंतर देखता है, वह मर-मर कर भटकता रहता है.

एक ज्ञानी पुरुष व्यष्टि और समष्टि में कोई अंतर नहीं देखता.

११. ब्रह्म की प्राप्ति शुद्ध मन और बुद्धि के द्वारा होती है. ब्रह्म प्राप्ति के बाद स्रष्टा और सृष्टि के बीच किसी भी अंतर का पता नहीं चलता. जो इनमें कोई अंतर देखता है वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है.

शाश्वत ईश्वर जीवों के शरीर में वास करता है

१२. अंगूठे-मात्र आकार का परमपुरुष (परमात्मा) जीव के हृदय में वास करता है. वह भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् का स्वामी है. उनके विषय में जान लेने के पश्चात् किसी का भय नहीं रहता. यही वह ब्रह्म है.

१३. यह अंगूठे-मात्र आकार का परमपुरुष धूम्ररहित (दोषरहित), उज्जवल श्वेत दीप के समान है. भूत एवं भविष्यत् का यह स्वामी जैसा आज है वैसा ही कल भी होगा (अर्थात् यह नित्य सनातन है). यही वह (परमात्मा) है (जिसके संबंध में तुमने पूछा था).

अनेकता में एकता देखने के परिणाम

१४. पर्वत के उच्च शिखर पर वर्षा की बूंदें जिस प्रकार किसी बाह्य शक्ति के प्रभाव से ढलान पर सभी दिशाओं में बिखरने लगता है और कभी सागर तक नहीं पहुंच पाता. उसी प्रकार **जो सृष्टि को स्रष्टा से अलग देखता है वह माया के प्रभाव से इधर-उधर भटक कर कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता.**

१५. जिस प्रकार शुद्ध जल में मिलाया गया निर्मल जल, दोनों मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार हे नचिकेता! एक ज्ञानी पुरुष का शुद्ध सर्वज्ञानी आत्मा भी परमात्मा में मिलकर एक हो जाता है. *(लेकिन एक अशुद्ध आत्मा कभी भी शुद्ध ब्रह्म में नहीं मिल सकता.)*

खण्ड ५. आत्म-नियंत्रण के विभिन्न चरण
जीवात्मा और सृष्टि

१. नौ दरवाजे वाले नगर में आत्मा वास करता है. जो उसका ध्यान करता है उसे किसी प्रकार का शोक नहीं होता. अज्ञानता के बंधन से मुक्त होकर वह स्वतंत्र हो जाता है. यही वह है.

कर्मयोगी सभी कर्मों (के फल) को सर्वथा त्यागकर कर्म रहित होता हुआ और बिना कर्म करवाता हुआ नौ द्वारवाले शरीररूपी घर में सुख से रहता है. (भ.गी. ५.१३) शास्त्रों में मानव शरीर को नौ द्वार (छिद्रों) वाला नगर कहा गया है. ये नौ छिद्र हैं—नेत्र, कर्ण एवं नासिका के दो-दो छिद्र, मुख, गुदा एवं मूत्रनली के एक-एक छिद्र. सभी जीवों एवं विश्व का स्वामी इसी नगर में जीवात्मा के साथ वास करता है और सभी कर्मों को निर्देशित करता है (देखें भ.गी. १३.२२).

२. आकाश में वास करता हुआ वह सूर्य है. गृह में वास करता हुआ वह अतिथि है. वह मानवों, देवों, सत्य एवं आकाश में वास करता है. उसका जन्म जल में, पृथ्वी पर एवं नदियों के रूप में पर्वतों पर है. वही सत्य ज्ञान है, वही महान है.

३. यही वह है जो प्राण-वायु को उपर छोड़ता है और अपान-वायु को नीचे छोड़ता है. उस शरीर के मध्य (हृदय) में बैठे आराध्य देव की सभी आराधना करते हैं.

४. मृत्यु के पश्चात् जब आत्मा—जो शरीर का स्वामी है और उसमें जीव बनकर वास करता है—शरीर से अलग हो जाता है तो पंचभूत आधार तत्त्व ही शेष रह जाता है. यही वह ब्रह्म है.

५. कोई भी मरणशील प्राणी न तो केवल प्राणवायु के आधार पर (जो कि उपर जाता है) रहता है और न ही अपान वायु (जो नीचे जाता है) के आधार पर जीवित रहता है. वे ब्रह्म के आधार पर जिंदा रहते हैं जिस पर ये दोनों, प्राणवायु और अपान वायु भी निर्भर करते हैं.

जीव का मूर्त अवतार

६. और हां, नचिकेता! मैं तुम्हें इस रहस्यमयी शाश्वत ब्रह्म के विषय में आगे भी कहूंगा और यह भी बताउंगा कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है?

७. कुछ आत्माएं पुनर्जन्म के लिए पुनः मानव गर्भ में प्रवेश करती हैं जबकि कुछ अपने पहले के कर्मों और ज्ञान के आधार पर पशु, पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े के रूप में जन्म लेती हैं (इस विषय में अधिक जानने के लिए देखें भ.गी. अध्याय १४).

जीवात्मा और परमात्मा एक ही है

८. वह परमपुरुष, जब इंद्रियां सो रही होती हैं या स्वप्नलोक में अनेकानेक आकर्षक रूप धारण कर रही होती हैं, तब भी क्रियाशील रहता है. यही वह ब्रह्म है और केवल उसे ही अमर कहा जाता है. संपूर्ण विश्व उसी में समाया है और उसका कोई भी बराबरी नहीं कर सकता. वस्तुतः यही वह है.

९. जिस प्रकार काष्ठ में छिपी अग्नि जंगल में पहुंचने पर काष्ठ के अनुसार विभिन्न रंग की हो जाती है, उसी प्रकार वही आत्मा विभिन्न जीवों में उनके रूपों के अनुसार अलग-अलग नजर आती है और यह इन सभी रूपों से अलग अपने वास्तविक लोकोत्तर रूप में भी अपने अस्तित्व में रहता है.

१०. जिस प्रकार एक जल किसी वर्तन में प्रवेश करने के पश्चात् उसी का रूप ले लेता है उसी प्रकार आत्मा भी सभी जीवों में उनके विभिन्न आकार के आधार पर अलग-अलग रूपों में दीखाई देती है और यह इन सभी से अलग अनुभवातीत रूप में अपने अस्तित्व में भी रहता है.

११. जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाला सूर्य, उन प्रकाशित वस्तुओं के गुण-दोष से प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार यह आत्मा सभी जीवों में वास करते हुए भी उनके हर्ष-विषाद आदि से प्रभावित नहीं होता *(जिस प्रकार रस्सी भी सर्प-रज्जु के आगमन से प्रभावित नहीं होता).*

आत्म-ज्ञान का अविवर्णीय आनंद

१२. सभी जीवों के अंदर वास करनेवाला अंतरात्मा ही सर्वोच्च शासक है. वही अपने एक रूप को अनेकाकार कर देता है. लेकिन जो ज्ञानी पुरुष इसे अपने अंदर अनुभव करते हैं उन्हीं को यह चिरंतन (Eternal) सुख मिलता है.

१३. सभी अस्थायी वस्तुओं में केवल चेतन वस्तुओं की चेतनता ही एक चिरस्थायी वास्तविकता है, जो एक होते हुए भी अनेकों की इच्छा पूर्त करती है. लेकिन **यह चिरंतन सुख उन ज्ञानियों को ही मिलता है जो उसे हमेशा अपने अं**दर अनुभव **करते हैं, अन्यों को नहीं.**

१४. ऋषि-मुनि उस अलौकिक परम आनन्द को "यही वह है" के रूप में बताते हैं. (नचिकेता पूछता है) "मैं उसे कैसे पहचानूंगा कि वह स्वयं प्रकाशित है या किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित है?" इसका उत्तर मिलता है :

विश्व का स्वयं प्रकाशित प्रकाश

१५. उसे सूर्य या चंद्र-तारे या बिजली या अग्नि प्रकाशित नहीं करते, वरन् ये सभी उसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं.

यह परमात्मा स्वयं प्रकाशित है. यह किसी अन्य स्रोत से प्रकाशित नहीं है. वह सूर्य एवं चंद्र को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे कोई प्रज्वलित दीप अन्य वस्तुओं को प्रकाशमय करती है. उस स्वयंप्रकाशित परमधाम को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही. वही मेरा परमधाम है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य इस संसार में पुनर्जन्म नहीं लेते. (भ.गी. गीता १३.१७, १५.१२ तथा कठ.उ. ५.१५, श्वे.उ. ६.१४, मु.उ. २.०२.१० भी देखें.) (भ.गी. १५.०६) जो तेज सूर्य में स्थित होकर सारे संसार को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में और अग्नि में है, उसे तुम मेरा ही तेज जानो. (भ.गी. १३.१७, १५.०६ भी देखें.) (भ.गी. १५.१२)

यह परमात्मा स्वयं प्रकाशित है और किसी अन्य स्रोत से प्रकाशित नहीं होता. वह चंद्र और सूर्य को भी उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे कोई प्रज्वलित दीपक अन्य वस्तुओं को प्रकाशित करता है. ब्रह्म का अलौकिक प्रकाश (दिव्य प्रकाश, ब्रह्म ज्योति) सभी प्रकाशीय उर्जा का स्रोत है और भ.गी. १३.१७ में उसे प्रकाशों का प्रकाश कहा गया है. वह परमात्मा सूर्य एवं चंद्र के आविर्भाव के पूर्व भी अस्तित्व में था, जबकि अग्नि का आविर्भाव सृष्टि निर्माण के समय हुआ. यह सभी का अप्रकटित प्रकृति में विलय के पश्चात् भी सत्ता में रहता है.

खण्ड ६. जीवन वृक्ष

इस ब्रह्माण्ड का स्रोत ब्रह्म है

१. यह विश्व सनातन अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के समान है जिसका जड़ उपर (ब्रह्म) में है और शाखाएं (ब्रह्माण्ड) नीचे हैं. वह ब्रह्म उज्जवल है. वही ब्रह्म है और वही एकमात्र अस्तित्व में रहता है. वह अमर है. इस ब्रह्म में संपूर्ण लोक समाहित है. इससे अलग कुछ भी नहीं है. वह निश्चित ही ब्रह्म है (देखें भ.गी. १५.०१).

ब्रह्म का महान भय

२. यह संपूर्ण विश्व परब्रह्म परमेश्वर से निकला है और उसी की उर्जा, प्राण, उसका सहारा है. हाथों में वज्र धारण किये हुए ये परमेश्वर अति कठोर हैं. उनके कानून से कोई नहीं बच सकता. जो इन बातों को जानते हैं वे अमर हो जाते हैं.

३. ब्रह्म के भय से अग्नि प्रज्वलित होता है, सूर्य प्रकशित होता है, इंद्र, वायु एवं स्वयं यम भी अपने कर्तव्यों का निर्वहण करते हैं.

४. यदि कोई पुरुष अपनी मृत्यु के पूर्व ब्रह्म को जान या समझ लेता है तो वह मुक्त हो जाता है. यदि नहीं, तो उसे पुनः पुनः अनेक लोकों और योनियों में जन्म लेना पड़ता है.

५. जैसे दर्पण में सामने आयी वस्तु सुस्पष्ट दिखती है उसी प्रकार शुद्ध अंतःकरण में ब्रह्म के दर्शन होते हैं. पितृलोक में इसे स्वप्न में देखे गये वस्तु के समान देखा जाता है. गंधर्वलोक में इसे जल में दृष्ट छवि के रूप में देखा जा सकता है. जबकि ब्रह्मलोक में इसे धूप एवं छाया के समान देखा जा सकता है.

विश्व जीव का क्रम

६. यह जान लेने के बाद--कि इंद्रियों का अस्तित्व (origin) प्रकृति से है और वे आत्मा से अलग हैं तथा कर्म केवल इंद्रियां करती हैं, आत्मा नहीं---ज्ञानी पुरुष इंद्रियों के विषयों से प्रभावित नहीं होते.

७. इंद्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से श्रेष्ठ बुद्धि है, बुद्धि से श्रेष्ठ अव्यक्त (अप्रकट) ब्रह्म है और अव्यक्त ब्रह्म से श्रेष्ठ ब्रह्म है.

८. ब्रह्म से भी श्रेष्ठ सर्वव्यापक, अतिसूक्ष्म परब्रह्म परमात्मा है. उन्हें जान लेने के पश्चात् जीवात्मा अमर हो जाती है.

इन्द्रियां शरीर से श्रेष्ठ कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और आत्मा बुद्धि से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है. (कठ.उ. ३.१० तथा भ.गी. ६.०७-०८ भी देखें.) (भ.गी. ३.४२) इस प्रकार आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सेवा, ध्यान, पूजन आदि से की हुई शुद्ध) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो! तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (कठ.उ. ३.०३-०६ भी देखें.) (भ.गी. ३.४३)

९. उसका अलौकिक रूप, हमारे आंखों की दृष्टि-क्षेत्र से बाहर है. अपनी भौतिक आंखों से वह दिखाई नहीं देता. उसे अपने शुद्ध बद्धि के अन्तर्बोध और निरंतर आत्मविचार के द्वारा जानकर साधक सभी प्रकार के संदेहों से मुक्त होकर अमर हो जाता है. (य एतद् विदुरऽमृतास्ते भवन्ति)

योग विधि

१०. जब पांचों ज्ञान-इंद्रियां, मन के साथ स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करता, तो यही परम अवस्था (या परम गति) कहलाती है.

११. इंद्रिय और मन के दृढ़ नियंत्रण को योग कहते हैं (स्थिराम् इन्द्रिय धारणाम्). इसके उपरांत योगी मन के चंचल स्वभाव से मुक्त हो जाता है. लेकिन हमें हमेशा सजग रहना चाहिए क्योंकि योग यद्यपि अत्यंत कष्ट से प्राप्त होता है परंतु इसे आसानी से खोया जा सकता है (लेकिन ज्ञान कभी भी खोया नहीं जा सकता).

आत्म-ज्ञान को शास्त्रों में श्रद्धा से ही प्राप्त किया जा सकता है

१२. आत्म-ज्ञान को कभी भी मन या वाणी या नेत्रों से प्राप्त नहीं किया जा सकता. इसे–"वह अवश्य है" जिन्होंने ऐसा कहा है–उन ऋषियों के वाणी में श्रद्धा करके ही प्राप्त किया जा सकता है. (देखें भ. गी. १३.२५)

१३. पहले उसका साकार रूप का ज्ञान होता है फिर उसके अलौकिक निराकार स्वरूप का. साकार रूप में जानी गयी आत्मा, ज्ञानी को उसके निराकार स्वरूप का ज्ञान देती है.

इच्छाओं तथा आसक्ति से मुक्ति आवश्यक है

१४. जब हृदय की सभी इच्छाएं ज्ञानागमन के पश्चात् समाप्त हो जाती हैं, तब मरणशील प्राणी अमर हो जाता है और उसी समय ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है.

१५. जब हृदय के सारे बंधन (इच्छाएं, अहं, वासनाएं, आदि) ज्ञान प्राप्ति के बाद टूट जाते हैं, तब मरणशील प्राणी इसी पृथ्वी पर, इसी शरीर में अमर हो जाता है. **यही सभी वेदान्त शिक्षाओं का सार है.**

१६. हृदय की १०१ नाड़ीयां में से केवल एक सुषुम्ना नाड़ी ही मस्तक के शिखर को बेंधती है. इसी नाड़ी के साथ उपर भ्रमण करते हुए प्राणी मृत्यु के समय अमरता प्राप्त करता है. यदि उसके प्राण का अंत किसी अन्य नाड़ी द्वारा हो तो उसका इस विश्व में पुनर्जन्म होता है.

१७. एक अंगूठे-मात्र परिमाण वाला परमात्मा सभी जीवों के हृदय में विराजमान रहता है. लेकिन दृढ़ता से उसे शरीर से उसी प्रकार अलग समझना चाहिए जैसे कि भूसे से अनाज. वही आत्मा शुद्ध और अमर होता है.

१८. मृत्यु के देवता के द्वारा यह शिक्षा प्राप्त कर, योग की सारी विधियों को जानकर, सभी अशुद्धियों से और मृत्यु के भय (अभिनिवेश) से मुक्त होकर, नचिकेता ने ब्रह्म

प्राप्ति की. जिस प्रकार उसने अपनी अंतरात्मा को जाना उसी प्रकार कोई अन्य भी इस अध्यात्मविद्या से ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है. **ॐ तत् सत्**

आदि गुरु शंकराचार्य

४. प्रश्नोपनिषद्

यह प्रारंभिक उपनिषदों में से एक है जिसका संबंध कृष्ण अथर्ववेद के साथ माना जाता है. इसमें कुल ६७ श्लोक हैं जिसमें ऋषि पिप्पलाद छः प्रश्नों के उत्तर देते हैं—१. सृष्टि वस्तु (रयि, Matter) एवं उर्जा (प्राण, Energy) से उत्पन्न है, २. प्राण ईश्वर की शक्ति है, ३. प्राण ईश्वर से उत्पन्न है, ४. चैतन्यता की तीन अवस्थाएं, ५. ॐ का ध्यान, एवं ६. आत्मा शरीर में प्राण के रूप में वास करती है.

प्रश्न १. सृष्टि का आविर्भाव

१. ॐ! परम ब्रह्म में समर्पित छः शिष्यगण आदरणीय पिप्पलाद ऋषि के पास हाथ में समिधा-रूपी उपहार लिए हुए इस आशा के साथ गये कि वे ब्रह्म के संबंध में उन्हें सब कुछ बतायेंगे.

२. ऋषि पिप्पलाद ने उनसे कहा—मेरे पास एक वर्ष तक तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ रहो. इसके उपरांत तुम मुझसे अपनी इच्छा अनुसार प्रश्न पूछ सकते हो. यदि मैं उसके विषय जानूंगा तो तुम्हें अवश्य जानकारी दूंगा.

३. एक वर्ष पश्चात् कात्य के पुत्र कबन्धी ने उनके पास आकर पूछा—आचार्य! ये सभी प्राणी कहां से उत्पन्न होते हैं ?

४. तब आचार्य ने कहा— संतान की इच्छा रखनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने, जो सभी प्राणियों के पिता हैं, तपस्या करके रयि (matter) और प्राण (energy) के रूप में एक युगल की उत्पत्ति की. पुनः उन्होंने स्वयं से कहा (इच्छा की)—"ये दोनों मेरे लिए नाना प्रकार की प्राणियों की उत्पत्ति करेंगे".

(यहां पर तपस्या का अर्थ संकल्प या उत्पन्न करने की दिव्य इच्छा है.)

५. (यह निश्चय है कि) सूर्य प्राण है, वह उर्जा है जो जीवन को आधार देती है. चंद्रमा रयि है, भोजन या वस्तु है. जिसका भी आकार है (पृथ्वी, जल या वस्तु) या वह जो निराकार है (आकाश या वायु) सभी भोज्य पदार्थ हैं. इसीलिए जिस भी किसी का आकार है वह या तो भोज्य पदार्थ है या वस्तु (रयि) है.

६. जब पूर्व दिशा में सूर्योदय होता है तो इस दिशा में सभी जीव-जन्तु इसके किरणों पर आश्रित होते हैं. और जब यह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे, उपर, मध्य—सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है तो अन्य सभी जीव-जन्तु इसके किरणों पर आश्रित रहते हैं.

७-८. सूर्य सभी जीवों की आत्मा (वैश्वानर अग्नि) है, उनका जीवन है. उनका (विश्वरूप) प्राण है, वह उष्म उर्जा है जिसका उदय प्रत्येक दिन होता है. जो ज्ञानी पुरुष

हैं वे इसे अनेक रूपों में जानते हैं–प्रकाशमय, सर्वज्ञ, अद्वैत, संपूर्ण रूपों के केन्द्र, समस्त जीवों के उष्मदाता (जीवनदाता).(इसीलिए) सभी जीवों के प्राण (आधार) सहस्रों किरणों वाले सूर्य का उदय होता है.

९. सूर्य एक वर्ष (बारह महीनों की अवधि) के प्रजापति (सभी जीवों के स्वामी) हैं, और उसके दो मार्ग हैं–दक्षिणी और उत्तरी. जो यज्ञ का आयोजन करते हैं, धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते हैं वे दक्षिणी मार्ग से चंद्रलोक (स्वर्ग) जाते हैं. ऐसे लोग निश्चित तौर पर पृथ्वी पर पुनर्जन्म पाते हैं. इसलिए वैसे ऋषि-मुनि जो संतान चाहते हैं वे दक्षिणी मार्ग पर चलते हैं.

१०. लेकिन वैसे लोग जो तपस्या, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा एवं ज्ञान के आधार पर परमात्मा का अन्वेषण करते हैं, वे उत्तरी मार्ग पर चलते हुए सूर्यलोक में जाते हैं. उनका कोई पुनर्जन्म नहीं होता. यह मार्ग अज्ञानियों के लिए निरुद्ध है. इसी के संबंध में अगला श्लोक है–

११. कितने ही लोग सूर्य को बारह रूपों (महीने) वाला पिता समझते हैं–जो वर्षा देता है, और स्वर्गलोक से भी उपर स्थित है. कितने ही अन्य लोग कहते हैं कि सूर्य सर्वज्ञ है जो सात चक्रों (इंद्रधनुषी सात रंग) वाले रथ पर सवार है जिसमें छः अरे (छः ऋतुओं के रूप में) हैं. **("सूर्य" शब्द परमात्मा के लिए भी प्रयोग होता है.)**

१२. प्रजापति एक महीना है जिसका कृष्णपक्ष रयि (वस्तु) है और शुक्लपक्ष प्राण (भोक्ता) है. इसीलिए कुछ ऋषि शुक्लपक्ष में यज्ञ करते हैं जबकि कुछ कृष्णपक्ष में.

१३. रात और दिन प्रजापति हैं जिसमें दिन प्राण (उर्जा) है और रात वस्तु या रयि है. जो दिन में संभोग कार्य करते हैं वे अपने प्राणों को और भी क्षीण करते हैं लेकिन रात्रिकाल में किया हुआ संभोग-कार्य स्वनियंत्रित ब्रह्मचर्य के समान होता है.

१४. भोजन प्रजापति है. भोज्य पदार्थों से ही वीर्य निर्माण होता है और इसी वीर्य से सभी जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं.

१५. जो प्रजापति के नियमों का पालन करते हैं उन्हें संतान-युगल (पुत्र और पुत्री) उत्पन्न होता है. लेकिन ब्रह्मलोक उन्हें ही प्राप्त होता है जो तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य एवं ज्ञान-प्राप्ति में संलग्न रहते हैं.

१६. विशुद्ध ब्रह्मलोक उन्हीं के लिए है जिनमें किसी भी प्रकार की कोई कुटिलता, असत्य या माया रूप नहीं है.

प्रश्न २. प्राण ईश्वर है

१. तब, भृगु परिवार की वैदर्भी ने पूछा–भगवन्! इस जीव के शरीर को कितने देवता आश्रय देते हैं और इनमें से कितने इसे अपने शक्ति से प्रकाशित करते हैं? और उनमें से कौन सर्वश्रेष्ठ है?

२. इस शिष्य को उन्होंने कहा–निश्चय ही वह देवता आकाश तत्त्व है. वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी ने भी वाणी (आदि कर्मेन्द्रियां), नेत्र और श्रोत्र (आदि ज्ञानेन्द्रियां) तथा मन (अंतःकरण) के साथ शरीर को प्रकाशित किया है. इसीलिए वे अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हुए गर्व से कहने लगे– हमने ही इस शरीर को आश्रय देकर धारण कर रखा है.

३. तब उनमें से सर्वश्रेष्ठ प्राण ने कहा–तुमलोग किसी भ्रम में मत पड़ो. मैं ही अपने इस स्वरूप को पांच भागों–प्राण (अंतर्वायु), अपान (श्वास छोड़ना), समान (पाचन वायु), उदान (वाणी), एवं व्यान (रक्त संचार)–में विभाजित कर इस शरीर को धारण करते हुए आश्रय देता हूं! परंतु अन्य देवता उनसे संतुष्ट नहीं हुए.

४. प्राण तब अभिमानपूर्वक शरीर से उपर की ओर बाहर निकला. जब ये उपर की ओर उठा तो बाकी सभी भी उपर की ओर उठे. जब ये नीचे की ओर स्थिर हुआ तो बाकी सभी भी नीचे की ओर स्थिर हुए. जिस तरह से रानी मधुमक्खी के अनुसार बाकी सारी मक्खियां बाहर जाती हैं या अंदर आती हैं, उसी प्रकार वाणी, मन, नेत्र और श्रोत्र ने किया. तब उन्होंने संतुष्ट होकर प्राण की प्रशंसा की.

५. प्राण अग्नि की तरह जलता है. यही सूर्य है, यही वर्षा है. यही वर्षा का देवता इन्द्र है. यही वायु है, यही पृथ्वी है, यही भोजन है. यही दिव्य देवता है. यही दृश्य है, यही अदृश्य है. यही देवताओं के सापेक्षिक अमरत्व का आधार है.

६. किसी रथ के चक्र के अरों की भांति ऋग्वेद की ऋचाएं, यजुर्वेद, सामवेद के मन्त्र, क्षत्रियों, ब्राह्मणों एवं सभी जीवों का जन्म–ये सभी इसी प्राण में प्रतिष्ठित हैं.

७. प्रजापति के रूप में तुम (प्राण) ही गर्भ में घूमते हो. यह तुम ही हो जिसका बार-बार जन्म होता है. हे प्राण! शरीरों और अंगों में रहनेवाले समस्त जीव तुम्हें ही बलि समर्पित करते हैं.

८. तुम ही सभी देवताओं और पितरों को समर्पित हवि को ले जानवाले प्रमुख देवता हो. तुम ही ऋषिओं के द्वारा अनुभूत सत्य हो.

९. हे प्राण! तुम ही निर्माणकर्ता, धारणकर्ता, और संहारकर्ता हो. तुम ही आकाश में, प्रकाशों के स्वामी अर्थात् सूर्य देवता के रूप में घूमते हो.

१०. हे प्राण! जब तुम जलवृष्टि करते हो, तब तुम्हारे ये प्रजागण प्रसन्न होकर सोचते हैं कि इस वर्ष भी पर्याप्त भोजन होगा, जितना वे चाहते हैं.

११. हे प्राण! तुम शुद्ध हो. तुम ही वो अग्नि हो जो कि भक्तजनों के द्वारा समर्पित अर्घ्य को भोग लगाते हो. तुम ही सभी के परम प्रभु हो. तुम्हारे भोजन के हम दाता हैं और तुम भोक्ता हो. तुम ही हमारे पिता हो.

१२. तुम्हारा वह स्वरूप—जो वाणी में, श्रोत्र में, नेत्र में, और मन में व्याप्त है—तुम उसे स्थिर एवं कल्याणमय करो.

१३. जो भी कुछ इन तीनों लोकों में होता है, वह सभी प्राण के नियंत्रण में है. हे प्राण! जैसे एक माता अपनी संतानों की रक्षा करती है उसी प्रकार हमारी रक्षा कर हमें धन एवं बुद्धि दो!

प्रश्न ३. प्राण की उत्पत्ति

१. तब अश्वलपुत्र कौशल्य ने पिप्पलाद से कहा : भगवन्! इस प्राण की उत्पत्ति कहां से हुई है? यह किस प्रकार आता है और कैसे अपने को विभाजित कर सभी के शरीर में व्याप्त रहता है? यह किस प्रकार शरीर से निकलता है? यह किस प्रकार बाह्य और अंर्तजगत् (छः इन्द्रियां आदि शरीर के भीतर रहनेवाले जगत्) को धारण करता है.

२. उसे आचार्य ने उत्तर दिया—तुम इतना कठिन प्रश्न पूछ रहे हो? तुम अवश्य ब्रह्म से संबंधित (वेदादि के ज्ञाता) होगे. अतः मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता हूं.

३. यह प्राण (या उर्जा) आत्मा से उत्पन्न है. जिस प्रकार से प्रत्येक पुरुष के अधीन उसकी छाया होती है उसी प्रकार आत्मा के अधीन प्राण होता है. मन के कर्म द्वारा यह शरीर में प्रवेश करता है.

४. जिस प्रकार कोई सम्राट् अपने अधिकारियों को निर्देशित करता है कि "यहां पर रहो और इन गांवों पर शासन करो", उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण अन्य पांच प्राणों को विभिन्न कार्यों में लगाता है.

५. (वह प्राण) उत्सर्जन और प्रजनन के अंग में अपान को लगाता है जबकि (प्राण) स्वयं इन चार अंगों में घूमता रहता है—मुख, नासिका, नेत्र एवं श्रोत्र. मध्य में (शरीर के नाभि भाग में) समान को स्थित करता है, जो जीवों के पेट में आये भोजन को शरीर के अन्य अंगों के मध्य वितरित करता है.

६. आत्मा हृदय के मध्य स्थित होता है, जहां १०१ नाड़ीयां रहती हैं, इन सभी की एक सौ एक शाखायें, और पुनः बहत्तर हजार प्रतिशाखाएं हैं. व्यान इन सभी १०१ x १०० x ७२,००० =७२७,२००,००० धमनियों में रक्त संचार करता है.

७. उदान सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा उपर उठते हुए शिरोमध्य शिखर के मार्ग से मनुष्य की आत्मा को उसके पुण्यकर्मों के अनुसार स्वर्ग ले जाता है, जबकि पापकर्मों के अनुसार उसे जानवरों, कीड़े और पौधों की दुनिया (नरक) में, और मिश्रित कर्म वालों को मानवों की दुनिया में ले जाता है.

८. यह निश्चित है कि सूर्य ही बाह्य प्राण है, इसी के अनुग्रह से नेत्रों में दृष्टि आती है. पृथ्वी में जो अपान वायु (गुरुत्व शक्ति) का देवता है वह अपान को पृथ्वी पर स्थिर रखता है. स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य आकाश को समान कहते हैं. जबकि वायु व्यान है.

९. शारीरिक तेज (गर्मी) को उदान कहते हैं, इसलिए जिसके शरीर का तेज समाप्त हो जाता है उसका सूक्ष्म शरीर विलीन हुई इन्द्रियों के साथ पुनर्जन्म या मृत्यु को पाता है.

जैसे हवा फूल से गन्ध को निकालकर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद छः इन्द्रियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है. (भ.गी. २.१३ भी देखें.) (भ.गी. १५.०८)

१०. जिस भी किसी संकल्प के साथ कोई जीवात्मा प्राण में प्रवेश करता है, प्राण उदान (तेज) के साथ मिलकर उसे उसके जीवनकाल के प्रमुख संकल्पानुसार लोक अथवा योनि में ले जाता है.

हे अर्जुन! मनुष्य मरते समय जिस किसी भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. (छा.उ. ३.१४.०१ भी देखें.) (भ.गी. ८.०६)

किसी का भविष्य इसी बात पर निश्चित होता है कि उसके जीवन के अंतिम क्षणों में उसका प्रमुख संकल्प क्या था. किसी ने अपने पुरे जीवनकाल भगवद्भक्ति और भजन में व्यतीत किया हो पर यह हो सकता है कि मृत्यु के अंतिम क्षणों में उसे भगवान के बारे में ध्यान न आये. इसलिए भगवद्भक्ति जीवन के अंतिम क्षणों तक होते रहनी चाहिए!

११. यदि कोई विद्वान् प्राण के विषय में उपर्युक्तानुसार जानता है तो वह ज्ञानी पुरुष अमरत्व पा लेता है और उसके संतान, उसका कुल कभी नष्ट नहीं होता. इसी विषय का अगला श्लोक है–

१२. जो भी कोई प्राण के उद्भव, इसके आगमन, स्थान, आध्यात्मिक पंचभेद, सर्वव्यापकता, आंतरिक एवं बाह्य अस्तित्व के संबंध में उपर्युक्तानुसार जानता है, वह निश्चित ही सृजनात्मक चक्र के अंत में ब्रह्मलोक में अमरत्व पा लेता है.

प्रश्न ४. चैतन्यता के तीन चरण

१. गर्ग ऋषि के परिवार से आनेवाले सूर्ययानी ने अगला प्रश्न पूछा–भगवन्! वह क्या है जो मानव शरीर में सोता और जागता है? कौन-सा देव स्वप्न देखता है? वह कौन है जो गहरी निद्रा से परमानंदित होता है (और इसे याद रखता है)? किसमें ये सभी इंद्रियां और अंग निद्रावस्था में भी कार्य करते हैं?

२. तब पिप्पलाद ने उससे कहा : हे गार्ग्य! जिस प्रकार अस्ताचल सूर्य की किरणें आकाश के तेजोमण्डल में एक हो जाती हैं और सूर्योदय के समय पुनः सभी ओर फैलती हैं. उसी प्रकार ये सभी विषय वस्तुएं एवं इन्द्रियां परमदेव मन में एक होकर स्थिर हो जाती हैं. इसीलिए उस सुषुप्तावस्था में कोई पुरुष न तो सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न स्वाद लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न आनंदित होता है, न प्रकाशित होता है और न ही गति करता है.

३. एक सुषुप्त या सक्रिय व्यक्ति के शरीर में केवल प्राण ही जाग्रत रहता है. अपान को गार्हपत्य अग्नि भी कहते हैं. व्यान एवं प्राण को भी अन्य नामों से जाना जाता है.

४. उर्ध्वश्वास (सांस लेना) एवं अधोश्वास (सांस छोड़ना) के समय चूंकि वायु का समान रूप से शरीर में प्रवेश होता है, इसीलिए इसे समान वायु कहते हैं. इस प्रकार यह हवन करनेवाला पुजारी है, मन यजमान है, उदान यज्ञ का अभीष्ट फल है क्योंकि यह प्रत्येक दिन मन रूपी यजमान को निद्रावस्था में ब्रह्म के पास (हृदयगुहा में) ले जाता है.

५. स्वप्नावस्था में मन जो भी देखा है उसी को यह पुनः पुनः देखता है. पहले की सुनी बातों को पुनः पुनः सुनता है. जो भी अनुभव किया है, उसे यह पुनः पुनः अनुभव करता है. दृष्ट एवं अदृष्ट, श्रुत एवं अश्रुत, तथा वास्तविक एवं अवास्तविक – मन सब कुछ देखता है. मन स्वयं स्वप्न को बनानेवाला, देखनेवाला तथा स्वप्न की सारी वस्तुएं बना लेता है.

६. जब मन घोर निद्रा के समय किसी अज्ञात शक्ति (उदान वायु) के अधीन होता है तब उस स्थिति में जीव कोई स्वप्न नहीं देखता. उस समय मन को एक क्षणिक निद्राजनित आनंदानुभूति होती है.

७-८. जिस प्रकार (सायंकाल में) एक पक्षी वृक्ष पर विश्राम करने के लिए जाता है, उसी प्रकार ये सभी–पृथ्वी एवं उसकी तन्मात्रा (सूक्ष्म तत्त्व), जल एवं उसका सूक्ष्म तत्त्व, अग्नि एवं उसका सूक्ष्म तत्त्व, वायु एवं उसका सूक्ष्म तत्त्व, आकाश एवं उसका सूक्ष्म तत्त्व, नेत्र एवं दृष्ट, श्रोत्र एवं श्रुत, घ्राण एवं जिघ्रित, जिह्वा एवं आस्वादित, त्वचा एवं स्पृष्ट, वाणी के अंग एवं वक्तव्य, हस्त एवं ग्राह्य वस्तु, पैर एवं उसके गन्तव्य, प्रजनन के अंग एवं संयोग-सुख, उत्सर्जन के अंग एवं उत्सर्जित पदार्थ, मन एवं मन्तव्य, बुद्धि एवं ज्ञातव्य, अहं एवं उसके विषय, प्राण एवं इस पर आश्रित सभी शरीर–घोर निद्रा में परमात्मा में आश्रय के लिए जाते हैं.

९. यह पुरुष है, जो देखता है, अनुभव करता है, सुनता है, सूंघता है, स्वाद लेता है, सोचता है और जानता है. वह कर्ता है, अहं है, एवं अविनाशी आत्मा में स्थित है.

१०. जो भी उस छायारहित, अशरीरी, रंगहीन, विशुद्ध अविनाशी पुरुष को जानता है, वह निश्चय ही उस परम अविनाशी आत्मा को प्राप्त कर लेता है. हे **सौम्य**! **जो आत्मा को जानता है, वह सर्वज्ञ एवं सर्वरूप हो जाता है.** इसी संबंध में अगला श्लोक है–

११. हे सौम्य! जिसमें मन, बुद्धि, इन्द्रियां, अहं, ईश्वर, प्राण, पंचतत्त्व एवं सभी आश्रय लेते हैं—जो उस अविनाशी परमात्मा को जानता है, वह सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप परमेश्वर का ही रूप हो जाता है. ऐसे पुरुष को आत्मज्ञ एवं परमहंस कहते हैं.

हे धनंजय! मुझसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है. यह सम्पूर्ण जगत् मुझ परब्रह्म परमात्मारूपी सूत में (हार की) मणियों की तरह) पिरोया हुआ है. (भ.गी. ७.०७)

प्रश्न ५. ॐ की साधना

१. तब शिबि के पुत्र सत्यकाम ने पिप्पलाद से पूछा : भगवन्, आप मुझे यह बताइये कि जो ॐ की प्रत्येक दिन साधना करता है, वह कहां जाता है?

२. उन्होंने कहा : हे सत्यकाम, ॐ अक्षर परब्रह्म, अपरब्रह्म एवं अन्य ब्रह्म (देवताओं) का प्रतीक है. इसीलिए जो सर्वव्यापक एवं ब्रह्म के ध्वनि-प्रतीक (प्रणव) ॐ को जान लेता है वह अपनी श्रद्धा के अनुसार अवश्य ही उनमें (अपर एवं परब्रह्म में) से एक ब्रह्मलोक प्राप्त कर लेता है.

३. ॐकार में से एकमात्रा वाले अक्षर 'अ' की भी भलिभांति साधना से प्रेरित होकर कोई साधक मृत्यु के पश्चात् पुनः पृथ्वी पर आता है. 'ऋक्' देव (ऋग्वेद की ऋचाएं) उसे पुनः मर्त्यलोक (मानव संसार) उपलब्ध करा देते हैं. तपश्चरण, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा के साथ वहां वह महिमा का अनुभव करता है.

४. जब वह (कोई साधक) दो मात्रा वाले अक्षर 'उ' का ध्यान करता है तब वह 'यजुर्' देव (यजुर्वेद के मंत्रों) के द्वारा चंद्रलोक या स्वर्ग प्राप्त करता है. स्वर्ग के ऐश्वर्य का अनुभव करके वह इस लोक में पुनः लौटता है.

५. पुनः जो परम पुरुष की तीन मात्राओं वाले ॐ के माध्यम से ध्यान करता है उसका एकात्म सूर्य (ज्ञान के प्रकाश) में होता है. जिस प्रकार एक सर्प अपना केंचुल त्यागता है, उसी प्रकार वह सर्व पापों से मुक्त हो जाता है. वह 'साम' ऋचा (सामवेद की श्रुतिओं) के देव द्वारा उत्तरी मार्ग (या देवमार्ग) से, जिसे क्रममुक्ति का मार्ग भी कहते हैं—ब्रह्मलोक ले जाया जाता है.

६. जब ॐकार की तीनों मात्राओं का ध्यान अलग-अलग किया जाता है, तो साधक को पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता है. लेकिन जब इनका ध्यान संयुक्त रूप में होता है तो चैतन्यता की तीनों अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न अवं सुषुप्त—में इसका ध्यान सही रूप में होता है और साधक आत्मभाव से विचलित नहीं होता है.

७. ज्ञानी जन 'अ' की (एकमात्रा की) साधना करके ऋचाओं के माध्यम से इस लोक (मर्त्यलोक) को प्राप्त करते हैं, यजुर् के माध्यम से 'उ' (दो मात्रा) की साधना करके स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं, और पूर्ण ॐकार का ध्यान करके साम् श्रुतिओं के द्वारा उस

ज्ञान (परब्रह्म) को प्राप्त करते हैं जो कि परमशांत, जरारहित, मृत्युरहित एवं भयरहित है. और वह सर्वश्रेष्ठ (पुरुषोत्तम) है.

प्रश्न ६. आत्मा का निवास

१. तब भारद्वाज के पुत्र सुकेश ने पिप्पलाद से पूछा : भगवन्! एक बार कोशल के राजपुत्र, हिरण्याभ ने मेरे पास आकर ये प्रश्न पूछे थे—"हे भारद्वाज के पुत्र! क्या तुम सोलह कलाओं में पारंगत पुरुष को जानते हो?" मैंने राजपुत्र से कहा : "मैं उसे नहीं जानता. यदि जानता होता तो अवश्य ही आपको बताता, क्योंकि जो असत्य बोलता है उसका जड़ से नाश हो जाता है. इसलिए मैं असत्य नहीं बोलता". पश्चात् वह अपने रथ पर सवार होकर शांतिपूर्वक लौट गया. अब मैं आप से पूछता हूं वह पुरुष कहां वास करता है?

परमेश्वर की सोलह कलाएं

२. पिप्पलाद ने उससे कहा : मेरे प्रिय शिष्य! वह परम पुरुष जिसमें सभी सोलह कलाएं वास करती हैं, वह यहीं है, इसी शरीर में है और इसी लोक में है.

३. परम पुरुष ने सोचा : "वह क्या है, जिसके चले जाने से मैं भी चला जाउंगा और उसके रहने से मैं भी इसी लोक में रहूंगा"?

४. इसीलिए उसने प्राण की रचना की और उसके पश्चात् प्राण से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी (पंच महाभूत), इन्द्रियां, मन (अंतःकरण), बुद्धि और अन्न (food or matter) की उत्पत्ति हुई. तत्पश्चात् अन्न से वीर्य, तप, मंत्र, अनेक प्रकार के कर्म, और सर्व लोक (ब्रह्माण्ड) हुए. तदनन्तर उस लोक में उसने विभिन्न नामों वाले अनेकों रूप बनाये.

इस प्रकार प्राण सभी पंद्रहों कलाओं का आधार है.

५. जिस प्रकार महासागर में मिलनेवाली नदियां अपना-अपना स्वरूप त्यागकर महासागर ही कहलाती हैं, उसी प्रकार ये सभी कलाएं अपने वास्तविक स्वरूप में अंतर्निहित होकर विभिन्न रूपों को त्याग देती हैं. ये सभी कलाएं अक्षर ब्रह्म के साथ एक हो जाती हैं.

६. उस पुरुषको जानो—वही जानने योग्य है, जिसमें संपूर्ण विश्व एक चक्र के अरों की भांति सर्वथा स्थित है—जिससे मृत्यु का तुम पर कोई प्रभाव न हो.

७. पिप्पलाद ने उनसे कहा—जहां तक मैं जानता हूं परमब्रह्म से उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है.

८. सभी शिष्यों ने अपने गुरु की आराधना की और कहा : आप वस्तुतः पितृतुल्य हैं, आपने हमें अज्ञान के महासागर से निकालकर ज्ञान के आध्यात्मिक किनारे पर ला दिया है. आप परमऋषि को नमस्कार है! आप परम ऋषि को नमस्कार है!

नोट २: यह कहा जाता है कि परमेश्वर के पास ये सोलह अलौकिक कलाएं (शक्तियां, गुण) हैं—१. श्री (लक्ष्मी, वैभव), २. भुवः (जमीन, संपत्ति), ३. कीर्ति (प्रसिद्धि), ४. इला (संवाद), ५. लीला (खुशी), ६. कांति (सौंदर्य, तेज), ७. विद्या (ज्ञान), ८. विमल (दोषरहित) ६. उत्कर्षिणी (आवेशक), १०. ज्ञान (बुद्धि), ११. क्रिया (कर्म), १२. योग (ऐक्य) १३. प्रह्वि (विनम्रता) १४. सत्य (अमरता) १५. इशान् (ईश्वर), एवं १६. अनुग्रह (वरदान दाता).

ॐ तत् सत्

५. मुण्डकोपनिषद्

यह प्रारंभिक उपनिषदों में से एक है जिसका संबंध अथर्ववेद के साथ माना जाता है. इसमें कुल ६४ मंत्र हैं. इसमें सृष्टि के उद्देश्य, धार्मिक कृत्यों के उद्देश्य एवं उनकी अनुपयोगिता, ब्रह्मज्ञान, तीर, धनुष एवं लक्ष्य संबंधित रूपक, दो पक्षियों की सादृश्यता और किस प्रकार ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है, उसके विषय में कहा गया है.

अध्याय १ खण्ड १.

१. ॐ! इस विश्व के सृष्टिकर्ता एवं पालनकर्ता ब्रह्मा, जो कि देवाधिदेव हैं, उन्होंने एकबार अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को सभी ज्ञान के स्रोत, ब्रह्मज्ञान के विषय में बतलाया.

२. उस ब्रह्मज्ञान को ब्रह्मा से सीखकर अथर्वा ने अंगिरा ऋषि को कहा, अंगिरा ने उस ब्रह्मविद्या के विषय में भारद्वाजवंशी सत्यवाहा को, और सत्यवाहा ने अंगिरस् को बतलाया.

३. शौनक ऋषि एक महान गृहस्थ थे, वे शास्त्रोक्त शिष्टाचार के साथ (हाथ में समिधा लेकर) अंगिरा ऋषि के पास गये और कहा : **भगवन्! वह क्या है, जिसके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् इस विश्व में सब कुछ ज्ञात हो जाता है?**

विद्या के दो प्रकार

४. महर्षि अंगिरा ने शौनक मुनि से कहा : ब्रह्मज्ञानियों के अनुसार निश्चय पूर्वक दो प्रकार की विद्याएं ही जानने योग्य हैं–उनमें से एक अपरा (लघु) विद्या, और दूसरी परा (उच्च) विद्या है.

५. इनमें से–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष–अपरा विद्या है जबकि परा विद्या वह है जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है.

६. इस परा विद्या के द्वारा ज्ञानी ब्रह्म को सर्वत्र और समस्त प्राणियों में देखते हैं. अन्यथा न तो वह दृश्य है, और न ही ग्राह्य है. वह रंग एवं आकृति, गोत्रादि, नेत्र, श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों, हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है. वह अत्यंत सूक्ष्म, सर्वव्याप्त, अविनाशी एवं सभी जीवों का स्रोत है.

सृष्टि का उद्देश्य

७. जिस प्रकार मकड़ी अपने जाल को बनाती या निगलती है, पृथ्वी पर अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न होती हैं, सर पर बाल उगते हैं, जीवित मनुष्य का

विकास होता है—इसी प्रकार इस सृष्टि में सब कुछ अविनाशी (परब्रह्म) से प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होते हैं.

सृष्टि निर्माण ब्रह्म शक्ति का अनायास प्रयास है. इसीलिए यह निरूद्देश्य होता है. ईश्वर की सृष्टि शक्ति माया का खेल मात्र है. यह उसकी वह लीला है जिसका कोई प्रयोजन नहीं होता है. यह स्पष्ट रूप से केवल भगवान् के अपरिमित उर्जा का पदार्थ में एवं पदार्थ का उर्जा में (आइंस्टीन के उर्जा नियमों के अनुसार) रूपांतरण मात्र है.

८. ब्रह्म केवल "तपस"—संकल्प या स्वेच्छा— से सृष्टि करता है. **उसके उर्जा से आदिम पदार्थ, "अन्नम्" उत्पन्न होता है, और इससे क्रमशः प्राण, मन, पंचमहाभूत, समस्त लोक, कार्य तथा कार्यफल उत्पन्न होते हैं.**

"तपस्" का तात्पर्य उष्मा एवं विचार दोनों से है. मैक्समूलर, इसका अनुवाद ब्रह्म के "विचारमग्नता" के रूप में करते हैं. इसका मतलब ब्रह्म-संकल्प ही है. तप का अर्थ गहन आत्म-चिंतन, ब्रह्म-विचार भी है. महाभारत (म.भ. 12.250.4) में मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को सबसे बड़ी तपस्या कहा गया है.

९. उस ब्रह्म से—जो सर्वज्ञ और सर्वज्ञाता है, जिसकी कार्यात्मक शक्ति ही ज्ञान है—ब्रह्मा (सर्जनात्मक शक्ति) पैदा हुए---जिससे नाम, रूप एवं भोज्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं.

खण्ड २

१. यही सत्य है. जिन कर्मों को ऋषियों ने वेदमंत्रों में देखा था, वे तीनों वेदों में अनेक तरह से बताये गये हैं. हे सत्य को चाहनेवाले मनुष्यों, तुम नियम के अनुसार कार्य करो. तुम्हारे लिए यही शुभकर्म की फलप्राप्ति का (स्वर्गगामी) मार्ग है.

२. जब अग्नि अच्छी तरह से प्रज्वलित हो जाये, और उसमें से लपटें उठने लगे, तभी एक अधिकारी मनुष्य को—दोनों लपटों (आज्यभाग के स्थान को छोड़कर) के मध्य—घी डालकर आहुति समर्पित करना चाहिए.

३. यदि किसी पुरुष के द्वारा पूर्णिमा, अमावस्या, पतझड़ का मौसम, फसल कटने समय, पशुओं-पक्षिओं और पौधों को भोजन देते समय क्रमानुसार अग्निहोत्र यज्ञ नहीं किया जा रहा, या वेदों के कथनानुसार कार्य नहीं किया जा रहा, तब वह ये सात लोक—भू, भुवर्, स्वर्, महर्, जन, तपस् एवं सत्य—कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता.

४. आग की ये सात भयानक लपटें हैं—काली, भयानक, मन की भांति तीव्र, गहरा लाल, धूम्र रंग का, चिंगारियों वाला, एवं देदीप्यमान.

५. जो सही समय पर इन देदीप्यमान ज्वालाओं के मध्य अग्निहोत्र समर्पित करता है, उसकी आहुतियां सूर्य की किरणो, एवं अग्नि की लपटों के द्वारा, स्वर्ग में ले जाया जाता है, जहां देवों के राजा इन्द्र वास करते हैं.

अग्निहोत्र स्वर्गगामी होते हैं

६. ये देदीप्यमान आहुतियां यजमानों का स्वर्ग के द्वार पर आदर-सत्कार करती हुईं प्रिय वाणी के साथ बार-बार कहती हैं—स्वागतम्, स्वागतम्, अपने सुकर्मों के द्वारा प्राप्त इस स्वर्ग में आपका स्वागत है.

धार्मिक कृत्यों के क्रियान्वयन् को विस्तृत रूप में बताने के लगभग असंभव कार्य को करने के पश्चात् ज्ञानी मुनिगण, वैसे लोगों को कठोर चेतावनी देते हैं जिन्हें इन धार्मिक कृत्यों से लगाव है, क्योंकि वे जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अनावश्यक हैं.

७. निश्चित ही अठारह पुरुषों (सोलह पंडितों के साथ-साथ यज्ञकर्ता एवं उसकी पत्नी) के द्वारा की गई ये यज्ञरूप नौकाएं अस्थिर हैं, जिनमें निम्न श्रेणी का उपासनारहित कार्य बताया गया है. **वैसे मूर्खजन जो इसे परम लक्ष्य मानते हैं वे पुनः पुनः जरा मृत्यु-चक्रमें फंसते हैं.**

भोग और ऐश्वर्य ने जिनका चित्त हर लिया है, ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण में भगवत्प्राप्ति का निश्चय दृढ़ नहीं होता है और वे परमात्मा का ध्यान नहीं कर सकते हैं. (भ.गी. २.४४)

८. वे मूर्ख हैं, जो अज्ञान के अंधकार में रहते हुए भी अपने आप को बुद्धिमान और ज्ञानी समझते हैं. वे एक अंधे (अज्ञानी पुरोहित) के द्वारा ले जाये जाते हुए अज्ञान से मूढ़मति होकर पुनः पुनः जन्म लेते हैं, पुनः पुनः दुःख भोगते हैं.

९. जो अज्ञान के अंधकार में अनेक तरह से डूबे होते हैं, वे यह सोचकर कृतार्थ होते हैं कि हमने अपने जिंदगी का लक्ष्य पूरा कर लिया है. ये सकाम कर्म करनेवाले लोग विषयों की आसक्ति के कारण कल्याण के मार्ग को नहीं जानते हैं. जब उनके पुण्योपार्जित कर्मों का फल समाप्त हो जाता है तो वे स्वर्ग से बहिष्कृत कर दिये जाते हैं.

१०. वे छले हुए, इष्ट और पूर्त कार्यों को ही श्रेष्ठ माननेवाले, किसी अन्य कार्य को श्रेयस्कर नहीं समझते हैं. अपने पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग को पुरस्कार में प्राप्त करनेवाले वे इस मर्त्यलोक में पुनः प्रवेश करते हैं.

११. लेकिन शांत चित, ज्ञानी पुरुष जो वनों में भिक्षाटनों के द्वारा जीवन यापन करते हैं, तपस्या करते हैं, देव पूजन करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर उतरी मार्ग से ब्रह्मलोक जाते हैं.

अलौकिक ज्ञान मोक्षगामी होता है

१२. ज्ञानी पुरुष—सभी लोकों की परीक्षा कर जिसे धार्मिक कृत्यों और मानवीय कार्यों से प्राप्त किया जाता है— सभी इच्छाओं से मुक्त होकर यह जानते हैं कि **सनातन ब्रह्म**

अशाश्वत संसाधनों (जैसे कि धार्मिक कृत्य, सेवादि) से नहीं प्राप्त किया जा सकता. उस अमर सनातन को प्राप्त करने के लिए वह किसी वेदज्ञ और जिसके मन में ब्रह्म पूरी तरह स्थित है, वैसे श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाता है.

उस तत्त्वज्ञान को तुम ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाकर, उन्हें आदर, जिज्ञासा तथा सेवा से प्रसन्न करके सीखो. तत्त्वदर्शी ज्ञानी मनुष्य तुम्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे. (भ.गी. ४.३४)

१३. वैसा शिष्य, जो पूरी विनम्रता के साथ, मन को पूरी तरह से शांत करके, इन्द्रियों को नियंत्रण में रखकर किसी गुरु के पास जाता है, उसे वे ब्रह्म मीमांसा का ज्ञान अवश्य देते हैं जिससे वह अविनाशी, नित्य पुरुषको जान लेता है.

अध्याय २. खण्ड १.

१. मेरे प्रिय शिष्य! यही सत्य है. जिस तरह प्रज्वलित अग्नि से उसी के समान रूपवाली अनेक चिंगारियां निकलती हैं, उसी तरह उस अविनाशी ब्रह्म से अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और पुनः उन्हीं में लुप्त हो जाते हैं.

२. वह दिव्य, निराकार, पूर्ण, असृजित, समस्त जगत् के बाहर एवं भीतर व्याप्त है. वह प्राणरहित, मनरहित होने के कारण शुद्ध एवं सनातन ब्रह्म से भी श्रेष्ठ है.

३. उसी (परमेश्वर) से प्राण, मन, समस्त इंद्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी उत्पन्न होते हैं, जो सभी जीवों का धारण करनेवाली है.

४. स्वर्ग उस परमेश्वर का मस्तक है, सूर्य और चंद्र उसके नेत्र, समस्त दिशाएं उसके श्रोत्र, विस्तृत वेद उसकी वाणी, वायु उसके प्राण, एवं यह जगत् उसका हृदय है. उसके दोनों पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है. वह समस्त प्राणियों के अंतरात्मा है.

५. उसी से अग्नि उत्पन्न होता है, जिसका ईंधन सूर्य है. सूर्य से मेघ उत्पन्न होता है, मेघ की वर्षा से पृथ्वी पर औषधि उत्पन्न होती है. उसी औषधि से वह वीर्य बनता है जो पुरुष स्त्री में सिंचन करता है. इस प्रकार उस परम पुरुष से अनेक जीवों की उत्पत्ति होती है.

६. जहां सूर्य और चंद्र अपने प्रकाश फैलाते हैं उसी शुद्ध विश्व में परमेश्वर से ऋक्, साम्, यजुर्, दीक्षा, यज्ञ, क्रतु, दक्षिणा, संवत्सररूपी काल, एवं यजमान उत्पन्न हुए हैं.

ब्रह्म सभी वस्तुओं का स्रोत है

७. उसी (परमेश्वर) से समस्त देव, साध्यगण, पुरुष, पशु, पक्षी, प्राण एवं अपान वायु, धान, जौ आदि अन्न, तपस्या, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य एवं यज्ञादि विधि उत्पन्न हुए हैं.

८. उसी से सात प्राण, सात अग्नि, सात प्रकार की समिधाएं, सात प्रकार के होम, और सातों लोक उत्पन्न होते हैं जिसमें समस्त प्राणी विचरते हैं. हृदयरूप गुफा में शयन करनेवाले परमेश्वर ये सात-सात के समुदाय द्वारा ही समस्त प्राणियों में स्थापित किए हुए हैं.

९. उसी से समस्त महासागर, पर्वत और उससे बहनेवाली अनेकों नदियां, और उसी से समस्त औषधियां और रस उत्पन्न हुए हैं जिससे पुष्ट हुए शरीर में यह अन्तरात्मा समस्त प्राणियों के हृदय में आश्रय पाता है.

मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपने ओज से सभी भूतों को धारण करता हूं और रस देनेवाला चन्द्रमा बनकर सभी वनस्पतियों को रस प्रदान करता हूं. (भ.गी. १५.१३)

१०. वस्तुतः वह सर्वव्यापी ही सभी संसार, कार्य एवं तप में समाहित है. हे सुमित्र! जो हृदय के गुहा में स्थित इस ब्रह्म को परम पुरुष के रूप में जानता है, वह इसी जीवन में अज्ञान के बंधन को काट डालता है.

खण्ड २

आत्मा साकार एवं निराकार दोनों है

१. ब्रह्म हृदय के आंतरिक गुहा में निवास करता है और कार्य करता है. जो भी कोई सांस लेता है, गति करता है या पलकें झपकाता है, ब्रह्म सभी का आधार है. हे शिष्यों! यह जान लो कि आत्मा विशाल भी है और सूक्ष्म भी है. वह सबके द्वारा वरण करने योग्य, सबसे श्रेष्ठ व समस्त प्राणियों के बुद्धि से परे है.

२. जो भी उज्जवल है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, जिसमें संपूर्ण विश्व और उसके वासी स्थित हैं, वही वह अविनाशी ब्रह्म है, वही प्राण है, वही वाणी और मन है, वही सत्य है, वही अमृत है, वही ज्ञात करने योग्य है. इसीलिए मेरे शिष्यों उसे ही ज्ञात करो.

तीर, धनुष एवं लक्ष्य का रूपक

३. उपनिषदों में वर्णित ॐ (प्रणव) को महाशस्त्र धनुष के उपर, आत्म-चिंतन से तेज किए हुए तीर (या मन) को रखकर, उस परम अक्षर पुरुषोत्तम (ब्रह्म) को लक्ष्य मानकर, दृढ मन से उस पर प्रहार करो.

४. ॐकार का ध्यान ही धनुष है, मन ही तीर है, एवं ब्रह्म लक्ष्य है. साधक को लक्ष्य पर अडिग मन से प्रहार करना चाहिए और तीर के समान ही ब्रह्म के साथ एकरूप हो जाना चाहिए.

ब्रह्मज्ञान माया को पार करनेवाला सेतु है

५. जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, और अंतरिक्ष, प्राण, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियां के साथ मन और सब कुच्छ आश्रय पाता है उसी अद्वैत ब्रह्म को जानो और शेष सभी बातों का त्याग करो. यह ज्ञान ही जीवों को संसार-सागर से पार कराकर अमरता (ब्रह्म) के किनारे पहुंचाने वाला सेतु है.

६. आत्मा हृदय के मध्यभाग में रहता है, जहां एक चक्र के अरों की तरह सभी नाड़ीयां मिलती हैं. उस आत्मा का ॐकार की तरह ध्यान करो. वही तुम्हें अज्ञान के भवसागर से पार करायेगा.

७. वह सर्वज्ञ, ज्ञानी, महान एवं दिव्य है. वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित, मनोमय होकर सबके प्राण और शरीर का नेता है. हृदय कमल में स्थित वह शरीर के सभी कोशिकाओं (cell) में वास करता है. वह आनन्दस्वरूप, अविनाशी शरीर को स्वस्थ एवं प्रसन्न रखता है. **उसी अमर आत्मा के ज्ञानप्रकाश से ज्ञानी जन उसे सर्वत्र एवं समस्त प्राणियों में देखते हैं.**

८. जब वह क्षर और अक्षर, महात्मा एवं पापी दोनों में देखा जाता है तो अहम्, इच्छा, मोहादि सभी के बंधन टूट जाते हैं, सभी संशय मिट जाते हैं और सभी कर्मबन्ध समाप्त हो जाते हैं.

९. ज्ञानी उसे शुद्ध और अक्षरब्रह्म के रूप में जानते हैं जो शुभ्र एवं सुनहरे माया के आवरण के पीछे चमकता रहता है. वह समस्त प्रकाशों का प्रकाश है.

१०. वह न तो सूर्य से प्रकाशित होता, न ही चंद्र, न तारे और न ही बिजली से—ये क्षणिक प्रकाश उसे उज्जवल कैसे कर सकते हैं? इस ब्रह्माण्ड में सब कुच्छ उसी के प्रकाश से प्रकाशित है.

११. **वस्तुतः यह संपूर्ण सृष्टि ही परब्रह्म है. (ब्रह्मैवेदं विश्वम् इदम् वरिष्ठम्). वह सर्वत्र है— उपर, नीचे, सामने, पीछे, दाहिने, बांये. वही सभी में व्याप्त है.**

इस उपनिषद् के आरंभ में एक प्रश्न पूछा गया है— भगवन् वह क्या है, जिसके ज्ञान से इस ब्रह्माण्ड में सब कुछ ज्ञात हो जाता है?

यही प्रश्न भगवान् कृष्ण के द्वारा भी भगवद्गीता में पूछा गया है जब वह अर्जुन से कहते हैं: मैं तुम्हें ब्रह्म-अनुभूति (विज्ञान) सहित ब्रह्मविद्या (ज्ञान) प्रदान करूंगा, जिसे जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है. (भ.गी. ७.०२)

जब कोई यह अच्छी तरह से जान जाता है कि इस विश्व में सब कुछ ब्रह्म है तब वह सभी को ब्रह्म के रूप में ही जानता है और कुछ भी नहीं. तब उस आत्मज्ञ पुरुषके लिए समस्त जगत् "ब्रह्ममय" हो जाता है, ब्रह्म के अलावा कुछ भी नहीं है.

अध्याय ३. खण्ड १.

दो पक्षियों की अनुरूपता

१. समान पंखवाले (एक दूसरे से संबंधित) दो पक्षी (ईश्वर एवं जीव) एक ही वृक्ष (शरीर) पर रहते हैं. उनमें से जीव वृक्ष के सुख-दुःख रूपी फल को खाता है, जबकि ईश्वर साक्षी रूप में बिना फल खाये हुए केवल देखता रहता है. (श्वे.उ. ४.०६ भी देखें)

यह परम पुरुष (अर्थात् आत्मा) ही (जीवरूप से) इस शरीर में साक्षी, सम्मति देनेवाला, पालनकर्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा आदि कहा जाता है. (भ.गी. १३.२२)

यह भगवान् की लीला है कि यथार्थ के दोनों पक्ष—दिव्य स्वरूप (भगवान्, ईश्वर) एवं जीवित वस्तु (जीवात्मा)—घोसला बनाकर शरीर रूपी वृक्ष में रहते हैं. उस वृक्ष में गुण और अवगुण रूपी फूल होते हैं. इन्द्रियों की तृप्ति के रूप में हर्ष एवं विषाद उसके खट्टे और मीठे फल हैं. जीवात्मा, अज्ञान के कारण वृक्ष के फल की ओर आकृष्ट होता है और भौतिक सुखों के प्रति खींचा चला आता है. इन फलों को खाकर जीव बंधन एवं मोक्ष के चक्र में फंस जाता है. जबकि ईश्वर वृक्ष पर बैठे हुए मात्र देखता रहता है और जीवात्मा को निर्देशित करता है. ईश्वर भौतिक सुखों से मुक्त रहते हुए इस लीला का साक्षी मात्र होता है. जैसे एक कमल पुष्प जल में रहकर भी नहीं भींगता है, वैसे ही ईश्वर इन भौतिक सुखों से अनिर्लिप्त एवं अप्रभावित रहता है.

२. उसी शरीर रूपी वृक्ष पर बैठे हुए उनमें से एक (जीव) अज्ञान एवं मोह के अंधकार में डूबकर दुःखी होता है. पर जब जीव ईश्वर की महिमा को देखता है तो वह भी दुःखों से मुक्त हो जाता है.

३. जब एक ज्ञानी पुरुष दिव्य-प्रकाशित सृष्टिकर्ता, ईश्वर, परम-पुरुष, ब्रह्मा के पिता को जान लेता है तब वह पुण्य-पाप के द्वैत से स्वतंत्र होकर शुद्ध हो जात है और सर्वोत्तम सत्य को जान लेता है.

४. वह प्राण ही है जो सभी में व्याप्त है. जो ज्ञानी उसके विषय में जान लेता है वह व्यर्थ की बातों में समय नहीं गंवाता है. माया-मोह से स्वतंत्र और आत्म-ज्ञान से प्रसन्न होकर वह सारे कार्य करते हुए ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ कहलाता है.

५. निरंतर सत्य-भाषण, तप, विशुद्ध ज्ञान एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण के कारण सभी प्रकार के दोषों से रहित होकर ज्ञानी पुरुष अपने शरीर के भीतर ही प्रकाशस्वरूप एवं परम विशुद्ध आत्मा का दर्शन करता है.

६. हमेशा न्याय (सत्) की ही विजय होती है, अन्याय (असत्) की नहीं **(सत्यमेव जयते नानृतम्).** न्याय के आधार पर ही दैविक उतरी मार्ग प्रशस्त होता है, जिसके उपर संत-महात्मा ईच्छारहित होकर सत्य के परमधाम को प्राप्त करते हैं.

७. ब्रह्म महान, दिव्य, कल्पनातीत, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर और दूर से भी दूरतम है. वह इसी शरीर में होने के कारण अति समीप भी है. ऋषि-मुनि इसी जीवन में, इसी शरीर में, ये सब कुछ जान लेते हैं.

८. ब्रह्म को न तो वाणी से, न ही नेत्रों से या न ही इन्द्रियों से जाना जा सकता है. उसे तपश्चर्या या अन्य धार्मिक कार्यों से भी नहीं समझा जा सकता है. उसे तो तापसिक कार्यों के द्वारा शुद्ध अंतःकरण, निरंतर ध्यान, एवं ज्ञान के आलोक से ही जाना जा सकता है.

९. समस्त प्राणियों के अंतःकरण में व्याप्त, आत्मा के सूक्ष्म सत्य को बुद्धि के प्रकाश से ही देखा या जाना जा सकता है. **इसीलिए** बुद्धि **को ज्ञान से विशुद्ध होने पर ही आत्मा सभी प्रकार से प्रकाशित होता है.**

१०. विशुद्ध अंतःकरणवाला ज्ञानी पुरुष जिस लोक की भी कामना करता है या जिन भोगों की भी ईच्छा करता है, उसे पा लेता है. इसीलिए आध्यात्मिक प्रगति के लिए किसी आत्मसिद्ध गुरु के पास जाना चाहिए.

खण्ड २.

१. आत्मज्ञानी पुरुष उस परम प्रकाशमान् ब्रह्म को जान लेता है जो संपूर्ण जगत् का आश्रय है. निष्काम बुद्धिमान् साधक जो ऐसे गुरु के प्रति समर्पित रहते हैं, वे पुनर्जन्म का भी अतिक्रमण कर जाते हैं (अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता).

२. **जो भोगवस्तुओं की कामना करते हैं, वे उसकी पूर्ति के लिए पुनः जन्म लेते हैं. लेकिन एक विशुद्ध अंतःकरण वाले ऋषि, जिसकी समस्त इच्छाएं इसी जीवन में विलीन हो गई हों, उनके लिए कोई पुनर्जन्म नहीं होता है.**

३. आत्मा को प्रवचनों, या बुद्धि या विद्वता से प्राप्त नहीं किया जा सकता. इसे वही जान सकता है जिनके हृदय में इसके प्रति उत्कट ईच्छा होती है. ऐसे पुरुषों के सामने ही यह आत्मा अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट करती है.

४. आत्मज्ञान वह नहीं प्राप्त कर सकता जिसकी श्रद्धा या निष्कपटता में संदेह हो. इसे सात्त्विक लक्षणों से रहित तपस्या से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता. किंतु जो ज्ञानी पुरुष प्रमादरहित होकर उत्कट अभिलाषा के साथ उपासना करता है वह ब्रह्मलोक में प्रवेश कर जाता है.

५. आत्मा को जान लेने के पश्चात् ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान से तृप्त हो जाता है. वह अपनी आत्मा को परमात्मा में स्थिर कर परमशांत और आसक्तिरहित हो जाता है. वह धीर पुरुष सर्वव्यापी परमात्मा के प्रति **समर्पित होकर** उसी में प्रवेश कर जाता है (परमात्मा के साथ आत्ममय हो जाता है). (**ज्ञान के बिना समर्पन असंभव है).**

६. परमात्मा को निश्चयपूर्वक जानकर, वेदान्त का ज्ञान प्राप्त कर, कर्मासक्ति के त्याग से अंतःकरण को शुद्ध करके, ये प्रयत्नशील मुनि पृथ्वी पर असीम शांति पाते हैं और मृत्यु के समय ब्रह्म प्राप्त करते हैं.

७. ऐसे महात्मा के देहान्त के पश्चात् उनकी सभी पंद्रह कलाएं (पांच महाभूत, और दस इंद्रियां) पुनः अपने उसी स्रोत (प्रतिदेवताओं) में स्थित हो जाते हैं. उसके पश्चात् उनके समस्त कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा परम अविनाशी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं. (*परम पुरुष के सोलहों कलाओं के विषय में जानने के लिए प्र.उ. ६.०२-०४ देखें*)

८. जिस प्रकार से बहती नदियां सागर में मिलकर अपने नाम व रूप खो देती हैं, उसी प्रकार एक ज्ञानी पुरुष, अपने नाम व रूप से रहित होकर दिव्य पुरुष परमब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है.

ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म समान है

९. **जो परब्रह्म को जान लेता है वह वस्तुतः ब्रह्ममय हो जाता है (ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति). उसके परिवार में कोई भी ब्रह्म से अज्ञानी नहीं होता.** पाप-पुण्य के शोक से दूर, शुद्ध अंतःकरण वाला वह मुक्त होकर अमर हो जाता है.

श्रद्धा और भक्ति (अर्थात् पराभक्ति) के द्वारा ही मैं तत्त्व से जाना जा सकता हूं कि मैं कौन हूं और क्या हूं. मुझे तत्त्व से जानने के पश्चात् तत्काल ही मनुष्य मुझमें प्रवेश कर (मत्स्वरूप बन) जाता है. (भ.गी. १८.५५)

१०. उस ब्रह्मविद्या के संबंध में एक ऋक् मंत्र है—ब्रह्मज्ञान उसी को देना चाहिए जिसने श्रद्धापूर्वक हवन कार्य किये हो, जो वेद में निपुण हो, ब्रह्म के प्रति समर्पित हो और जिसने विधिपूर्वक सर्वश्रेष्ठ व्रत, अग्नि-यज्ञ का पालन किया हो.

भगवद्गीता में भी ज्ञान के प्रति इसी प्रकार के नियंत्रण स्थापित किये गए हैं जो वर्तमान काल के ज्यादा अनुरूप भी हैं– (गीता के) इस गुह्यतम ज्ञान को तपरहित और भक्तिरहित व्यक्तियों को, अथवा जो इसे सुनना नहीं चाहते हों, अथवा जिन्हें मुझमें श्रद्धा न हो; उन लोगों से कभी नहीं कहना चाहिए. (भ.गी. १८.६७)

जिस प्रकार बंजर भूमि में बीज बोना बेकार है, उसी प्रकार किसी दिग-भ्रमित व्यक्ति को ज्ञान की बातें बताना, किसी धन-लोलुप पुरुषको तपस्या के महत्त्व बताना, किसी चिड़चिड़े व्यक्ति को इंद्रिय-नियंत्रण के विषय में बताना, किसी विलासी को भगवान् राम के त्याग का प्रवचन देना व्यर्थ है. एक श्रद्धायुक्त पुरुषही भगवद्गीता या किसी भी धर्मग्रंथ

का पात्र हो सकता है. श्री रामकृष्ण के अनुसार, कोई उन्हें उतना ही समझ सकता है जितना वे बताना चाहते हैं. जिसे वे, उनके कर्मों के अनुसार, दिव्य ज्ञान देना चाहते हैं वही उसे प्राप्त कर पाता है.

११. इस प्रकार पहले ऋषि अंगिरा ने सत्य के विषय में कहा था. जिस पुरुष ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया है, और जो गंभीर नहीं है, वह इस ज्ञान का अधिकारी नहीं है. परम ऋषियों को नमस्कार है! परम ऋषियों को नमस्कार है!

ॐ तत् सत्

६. माण्डुक्योपनिषद्

अथर्ववेद से संबंधित माण्डुक्योपनिषद् लघुतम उपनिषद् है. यह गद्य में है और इसमें कुल १२ मंत्र हैं जिसमें ॐकार के गूढ़ार्थ विषय का विश्लेषण है. इसमें तीनों—जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्त—मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के साथ-साथ अलौकिक आभा की चतुर्थ अवस्था के संबंध में भी उल्लेख है.

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का आरंभ उर्जा की तरंगों के स्पंदन से होती है. ॐ इसका ध्वनि प्रतीक चिन्ह है. ॐ हमेशा ही परमाक्षर का सबसे उपयुक्त ध्वनि प्रतीक चिन्ह माना ग्या है जिसकी सहायता से एक साधक सत्य को प्राप्त कर लेता है. यह प्रथम ध्वनि है जो कि सृष्टि में दृश्य एवं अदृश्य दोनों का प्रतिनिधित्व करती है.

माता के गर्भ से बाहर आते ही बालक जो प्रथम ध्वनि करता है वह ॐ में से "अ" है. यही ध्वनि लगभग सभी भाषाओं में प्रथम अक्षर भी है. यह भारोपीय भाषाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण स्वर वर्ण है. किसी भी व्यंजन वर्ण का उच्चारण बिना स्वर वर्ण की सहायता से नहीं हो सकता है. इसीलिए ॐकार में "अ" प्रथम अक्षर है और इसका संबंध दृश्य सृष्टि एवं बाह्य वस्तुओं से है. यह चैतन्यता की प्रथम अवस्था है. इसे आत्मा, जीव या अंतःकरण का जाग्रतावस्था भी कहा जाता है. "उ" अक्षर स्वप्नावस्था एवं "म" अक्षर आत्मा की सुषुप्तावस्था का प्रतिनिधित्व करता है.

ॐकार हिन्दुओं का अव्यक्तिगत तथा अक्षर ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है जो सर्वशक्तिशाली है, सर्वव्याप्त है एवं समस्त दृष्टिगत सत्ता का स्रोत है. ब्रह्म स्वयं में अबोधगम्य है. इसलिए हमारे लिए उस अग्राह्य को जानने के लिए किसी प्रतीक चिन्ह का होना आवश्यक हो जाता है. इस प्रकार ॐकार ईश्वर की सगुण और निर्गुण दोनों अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है. इसलिए इसे प्रणव भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य होता है कि यह जीवन से परे है और ॐकार हमारे प्राण का संचालक है.

ॐ का क्या तात्पर्य है?

ॐ (ओम्) हिन्दू धर्म का एक पवित्र ध्वनि है जिसे सभी मंत्रों में महानतम माना जाता है. यह एकाक्षर ॐ तीन ध्वनियों (वर्णों)—अ, उ, म्—से मिलकर बना है (संस्कृत भाषा-व्याकरण के सन्धि नियमों के अनुसार, स्वर "अ" एवं "उ" मिलकर "ओ" हो जाते हैं). इसकी त्रिगुणात्मक प्रकृति इसके अर्थ को जानने के लिए आवश्यक है. यह अनेकों प्रमुख त्रिकों का भी प्रतिनिधित्व करता है.

ॐ का "ओम्"के रूप में भी उच्चारण किया जा सकता है.

- "अ" का महत्त्व सृष्टि निर्माण से है.
- "उ" सृष्टि-धारण के लिए है.
- "म्"महेश की संहार शक्ति का द्योतक है.

- तीन लोक हैं– पृथ्वी, अंतरिक्ष, एवं स्वर्ग.
- हिन्दुओं के तीन भगवान् हैं–ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश.
- तीन पवित्र ग्रंथ हैं–ऋक्, यजुर्, साम.
- भगवान के तीन नाम हैं–ओम् तत् सत् .
- प्रकृति के तीन गुण हैं.
- वास्तविकता के तीन पहलू हैं–सत् चित् आनन्द.

इस प्रकार ॐकार में संपूर्ण अलौकिक विश्व का सार समाहित है. इसकी पुष्टि भारतीय दर्शन की उस मान्यता से भी होती है जिसके अनुसार सर्वप्रथम ध्वनि प्रकट हुआ (ध्वनि का स्फोट सिद्धान्त) और उसी से संपूर्ण विश्व का निर्माण हुआ. इसका एक और भी गूढ़ तात्पर्य है कि सबसे पवित्र ध्वनि के रूप में ॐकार संपूर्ण विश्व में जो भी कुछ है सभी को साथ रखे हुए है और सभी का मूल है.

जो साधक सब इन्द्रियों को वश में करके, मन को परमात्मा में और प्राण को मस्तक में स्थापित कर तथा योगधारणा में स्थित होकर अक्षरब्रह्म की ध्वनि-शक्ति, ओंकार, का उच्चारण करके मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह परमगति को प्राप्त होता है. (भ.गी. ८.१२-१३)

ओम् या ॐकार तीन प्रारंभिक ध्वनियों–अ, उ, एवं म्–का संयुक्ताक्षर है. यह सभी उच्चारित ध्वनियों का स्रोत है. इसीलिए ब्रह्म के प्रतीक के रूप में यही सबसे उत्तम ध्वनि है. यह पौराणिक स्फुरण है जो हमारे शारीरिक क्रिया-कलापों को नियंत्रित करनेवाले पांचों तंत्रिका केन्द्रों (nerve centers) को गति प्रदान करते हैं. योगानन्द ॐकार को ब्रह्माण्डीय मोटर के कंपन की ध्वनि कहते हैं. बाइबल कहता है–प्रारंभ में शब्द (आमेन या ओम्) था, और शब्द ईश्वर के साथ था, और शब्द ईश्वर था (जॉन १.०१).

श्री रामकृष्ण कहते हैं–"ॐकार की गिनती शब्दों में नहीं होती है". "यह शब्द नहीं है, स्वयं ईश्वर है", ऐसा स्वामी विवेकानन्द का कहना है. उस परमात्मा के अनेकों नाम हैं, विश्व के स्रोतों के नाम के रूप में ॐ लघुतम (एकाक्षरी), प्रजातिय (सार्वलौकिक) नाम है.

अध्याय १- आगम प्रकरण

(धार्मिक व्याख्यान)

१. हरि ॐ. सकल विश्व ओम् अर्थात् ब्रह्म है. इसे ऐसे भी कहा जा सकता है–जो भी कुछ, भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् में है, वह वास्तव में ॐ ही है. इसके अलावा जो भी कुछ त्रिकाल से परे है, वह भी ॐ है.

२. यह सब कुछ वास्तव में ब्रह्म ही है. यह आत्मा (शरीर के भीतर का जीवात्मा) भी ब्रह्म है. (अयमात्मा ब्रह्म)

नोट ५. वेदान्त में उल्लेखित आत्मा शब्द जीवात्मा के लिए ही प्रयुक्त है, जो ब्रह्म का अनिवार्य अंश है. इस आत्मा या चैतन्यता के चार भाव या अवस्थाएं हैं.

३. जाग्रतावस्था में आत्मा को वैश्वानर कहते हैं, जो बाह्य पदार्थों के विषय में सचेत रहता है. उसके सात अंग और उन्नीस मुख हैं. वह अनेक भौतिक वस्तुओं को अनुभव करता है. यह चैतन्यता की प्रथम अवस्था है.

४. आत्मा की स्वप्नावस्था को तैजस् कहते हैं, जो कि आंतरिक (मानसिक) वस्तुओं के प्रति सचेत रहता है. उसके पास भी सात अंग और उन्नीस मुख होते है. वह मानसिक जगत् के सूक्ष्म पदार्थो का उपभोग करता है. यह चैतन्यता की दूसरी अवस्था होती है.

व्यक्तिगत चैतन्यता (आत्मन्) की तीन अवस्थाएं

आत्मन् की तीन प्रमुख अवस्थाएं	**1. व्यष्ठि भाव** Individual or Microcosmic level	**2. समष्ठि भाव** Universal or Macrocosmic level
(1) जाग्रत् अवस्था (भौतिक शरीर)	वैश्वानर या विश्व, भौतिक स्तर, ओम् का "अ" वर्ण	विराट् या वृहत् का आविर्भाव (भ.गी. का एकादशवां अध्याय)
(2) स्वप्नावस्था (सूक्ष्म शरीर)	तैजस्, मानसिक स्तर, ओम् का "उ" वर्ण	हिरण्यगर्भ, सकल मन या ब्रह्मा
(3) गहन निद्रावस्था (कारण शरीर)	प्रज्ञा, बौद्धिक स्तर, ओम् का "म्" वर्ण	ईश्वर, या भगवान्
तुरीय (अद्वैत) अवस्था	आत्मसिद्ध अवस्था, ज्ञान-समाधि, "ओम्"	परब्रह्म, ॐ, ओम्

नोट ६. उस महा अलौकिक समष्टि के निम्नांकित सात अंग हैं—स्वर्ग के समान मस्तक, सूर्य की तरह नेत्र, वायु के समान प्राण, अंतरिक्ष के समान शरीर, अग्नि के जैसा मुख, जल के समान अवर अंग (belly) और पृथ्वी के समान पैर.

नोट ७. उस महा अलौकिक व्यष्टि के उन्नीस मुख हैं—पांच ज्ञानेन्द्रियां (नासिका, रसना, नेत्र, त्वचा, एवं, कर्ण), पांच कर्मेन्द्रियां (मुख, हस्त, पाद, गुदा एवं मूत्र नली), पांच प्राण एवं चार (सूक्ष्म) अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार).

५. गहन निद्रावस्था में—जिसमें सोनेवाला न तो किसी वस्तु की अपेक्षा करता है और न ही स्वप्न देखता है— स्थित आत्मा को व्यष्टि स्तर पर प्रज्ञा कहते हैं और समष्टि स्तर पर

ईश्वर कहते हैं. इस अवस्था में क्षणिक परमानन्द एवं चैतन्यता से संपूर्ण अनुभव एकाकार हो जाते हैं. यह स्वप्न-स्मरण एवं जाग्रतावस्था का द्वार है. यह चैतन्यता की तीसरी अवस्था है.

६. ईश्वर तीनों अवस्थाओं का स्वामी है. वह सर्वज्ञाता है. वह अंतःनियन्ता है. वह सभी वस्तुओं का स्रोत है. सभी वस्तुओं का जन्म उसी से होता है और उसी में अंततः मिल जाता है.

नोट ८: यह हमारे व्यक्तिगत स्तर पर स्वप्नावस्था के साथ-साथ समष्टि प्रज्ञा एवं अलौकिक मन का भी सटीक वर्णन है. निद्रावस्था में सारे अनुभव, शिक्षा, कष्टादि विलुप्त हो जाते हैं जबकि जागने पर वही सब पुन: जागृत हो उठते हैं.

हमारे तीनों शरीरों से जुड़ी हुई तीन अवस्थाएं

(१) भौतिक (physical) शरीर उन अंगों से मिलकर बना है जो शरीर की सहायता करते हैं.

(२) सूक्ष्म (**subtle**) शरीर में केवल मन होता है.

(३) कारण (**causal**) शरीर हमारे कार्मिक स्मारकों का भंडार है, जिसे संस्कार कहते हैं.

जाग्रतावस्था में तीनों शरीर एकीकृत हो जाते हैं और वे एक होकर कार्य करते हैं. वे प्राण के साथ इस प्रकार जुड़े होते हैं : प्राण+(१)+(२) +(३)

स्वप्नावस्था में भौतिक शरीर अन्य दो शरीरों (सूक्ष्म एवं कारण शरीर) से अलग हो जाता है. इस अवस्था में भौतिक शरीर एवं अन्य अंग विश्रामावस्था में होते हैं. लेकिन मन (सूक्ष्म शरीर (२) और कारण शरीर (३) सक्रिय रहते हैं. मन एक विस्थापित स्वप्न शरीर बना लेता है जो स्वप्न कार्य करता है. इस अवस्था में केवल (२) और (३) शरीर ही सक्रिय रहते हैं और प्राण के साथ प्रकार बंधे रहते हैं : प्राण+(२)+(३)

गहरी निद्रा (या सुषुप्तावस्था) में मन भी निष्क्रिय हो जाता है और तीनों शरीर अलग होकर निष्क्रिय हो जाते हैं. यह जीव के लिए क्षणिक मुक्तावस्था होती है. उसे पूरी तरह आराम मिल जाता है, वह तरोताजा हो जाता है और शांति का आनंद लेता है. केवल प्राण का ही बंधन भौतिक शरीर को जिंदा रखता है. जब यह बंधन भी टूट जाता है तो शरीर मृत हो जाता है. तीनों शरीर प्राण से तीनों अवस्थाओं में जुड़े होते हैं. गहरी निद्रावस्था में ये तीनों शरीर एक दूसरे से अलग रहते हैं. वे केवल प्राण-सूत्र से ही जुड़े होते हैं. मृत्यु की अवस्था में प्राण का यह बंधन भी समाप्त हो जाता है. सूक्ष्म और कारण दोनों शरीर प्राण के साथ-साथ भौतिक शरीर को त्याग देते हैं और पांच आधारभूत तत्त्वों के साथ भौतिक शरीर मृतरूप में पड़ा रहता है. जब शरीर को जलाया जाता है तब ये पांचों तत्त्व भी अपने-अपने स्रोतों में मिल जाते हैं और एक जीवन चक्र समाप्त हो जाता है. ॐ!

चैतन्यता की तुरीयावस्था

७. चौथी (तुरीय) अवस्था के विषय में कहा जाता है कि यह न तो आंतरिक और न ही बाह्य जगत के संबंध में और न ही दोनों जगत के संबंध में चेतन होता है. यह न तो घना चेतन, न साधारण चेतन और न ही अचेतन होता है. **यह अलक्षित (अव्यक्त), असंबंधित, अबोध्य, अचिंत्य और अवर्णनीय होता है. यह चैतन्यता का सार होता है जो तीनों अवस्थाओं में आत्मा के रूप में परिलक्षित (व्यक्त) रहता है. यह सभी अनुभवों का अंत है.** यह गहरी शांति है, आनंद है, और अद्वैत है. इस ब्रह्मावस्था के अनुभव को ही तुरीयावस्था कहते हैं.

तुरीयावस्था के अलौकिक सत्य का न तो वर्णन किया जा सकता है और न ही इसे किसी और को सिखाया जा सकता है—यह किसी व्यक्ति के शरीर में स्वयं ही उत्पन्न होकर उसे आत्मा के समीप लाता है. यह आध्यात्मिक विकास की बात है.

अनंत काल से, माया से उत्पन्न जीवात्मा अज्ञान के अंधकार में सोया हुआ है. जब तुरीयावस्था में ज्ञानोदय के समय जीव जाग्रत होता है तब उसे इस अवस्था में यह विश्व और उसके सभी पदार्थ स्वप्न के समान अवास्तविक प्रतीत होते हैं. क्षणिक ध्यान-समाधि के विपरीत तुरीयावस्था स्थायी ज्ञान-समाधि है. ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाग्रत् विश्व भी अलौकिक स्वप्न-लोक के समान है. वह जान लेता है कि यह जगत् वैसा नहीं है जैसा यह देखने में लगता है और जैसा यह है उसे तुरीयावस्था के अलावा देखा नहीं जा सकता. जगत् का द्वैत-भाव अज्ञान के कारण ही है— माया मात्रं इदं द्वैतम्. जगदीश, जगत् एवं जीव सभी एक ही है. आत्मा को इस तरह जानना या देखना ही मोक्ष है.

८. वही आत्मा एकाक्षर ॐकार है. ओम् को अलग-अलग अ, उ एवं म् के रूप में भी देखा जाता है. ये अवस्थाएं ही अक्षर है और ये अक्षर ही अवस्थाएं हैं. और ये अक्षर अ, उ और म् हैं.

९. वैश्वानर आत्मा, जिसका कार्य-क्षेत्र जाग्रतावस्था है, की सर्वव्यापकता के कारण या प्रथम वर्ण के कारण, ओम् का प्रथम अक्षर "अ" है. जो यह जान लेता है उसकी सभी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं और वह महान लोगों की पंक्ति में प्रथम कहलाता है.

बिना मुख को खोले हुए कोई भी ध्वनि उत्पन्न नहीं की जा सकती और मुख खोलने पर जो प्रथम ध्वनि उत्पन्न होती है वह "अ" है. इसलिए "अ" सर्वव्यापक है और अधिकतर भाषाओं का प्रथम वर्ण है. इसलिए नवजात शिशु का भी यह प्रथम अक्षर होता है. जाग्रतावस्था, स्वप्न एवं सुषुप्तावस्था के पहले होती है.

१०. तैजस आत्मन् जिसका कार्य क्षेत्र स्वप्नावस्था होता है, वह ओम् का दूसरा अक्षर "उ" है जो "अ" एवं "म" के मध्य में आता है. "उ" अक्षर स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट है,

क्योंकि यह "अ" के तुरंत बाद आता है. जो यह जानता है वह ब्रह्मज्ञ होकर सभी से समान व्यवहार पाता है और उसके परिवार में कोई भी ब्रह्मज्ञान से अनभिज्ञ नहीं होता.

११. घोर निद्रावस्था में स्थित, ओम् का तीसरा अक्षर "म्" है क्योंकि उसमें "अ" और "उ" दोनों का विलय हो जाता है या वे "म्" में मिल जाते हैं. जो यह जानता है वह समस्त ज्ञान को अपने में मिलाने में या समझने में सक्षम होता है.

१२. जो साधारण संसाधनों से अबोध, शुभ-अशुभ, अद्वैत एवं असाधारण लोक की समाप्ति है वह अनाक्षर, तीनों अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला ॐकार चौथी अवस्था है. इस प्रकार ओम् वस्तुतः आत्मा ही है. जो यह जान लेता है वह स्वयं को आत्मा में समर्पित कर देता है.

नोट ६. स्वप्नावस्था जाग्रत एवं गहरी निद्रा के मध्य में आती है.

नोट १०. जाग्रत एवं स्वप्नावस्था घोर निद्रा में मिलते हुए प्रतीत होते हैं.

नोट ११. तुरीयावस्था वस्तुतः कोई अवस्था नहीं है. यह जीवन का परम लक्ष्य एवं सभी अवस्थाओं का अंत है.

ॐ तत् सत्

ध्यान की एक सहज विधि

(१) अपने मुख, हाथ, और पैर धोयें तथा सिर, गर्दन, और रीढ़ की हड्डी को सीधे ऊपर की ओर रखते हुए आरामदेह मुद्रा में किसी शान्त, स्वच्छ, और अंधेरे स्थान में बैठें. ध्यानकाल में संगीत या धूपबत्ती आदि की सलाह नहीं है. ध्यान का काल और स्थान निश्चित होना चाहिये. मन, वचन, और कर्म से यम-नियम का पालन करें. कुछ योगासन भी आवश्यक हैं. प्रतिदिन १५-२० मिनट प्रातःकाल, संध्या, और मध्य-रात्रि का समय ध्यान के लिये सर्वोत्तम समय है. **(२)** जिस इष्टदेव में आस्था है, उनका नाम या रूप का स्मरण करें, उनका आशीर्वाद मांगे. **(३)** अपने नयन मूंद लें, और ५-१० अत्यन्त धीमे और गहरे श्वास लें. **(४)** अपने हृदय-केन्द्र के अन्दर अपनी दृष्टि, मन, और भाव केन्द्रित कर धीरे धीरे सांस लें. भीतर की ओर सांस लेते समय मन ही मन 'सो' का जाप करें, और बाहर की ओर सांस लेते समय 'हम' का. ऐसा सोचें जैसे कि स्वयं श्वास ही ये 'सो' और 'हम' ध्वनि उच्चारित कर रहा है. मानसिक दृष्टि से नथुनों द्वारा सांस को भीतर जाते, और फिर बाहर आते हुए देखते रहें. श्वास को नियंत्रित करने का प्रयास न करें, स्वाभाविक श्वास लें. **(५)** श्वास ली जाती हुई वायु के अनन्त देश में अपने-आप को लीन करने का प्रयत्न करें. यदि मन श्वास-पथ का अनुसरण करने से विचलित हो, तो पुनः पग **(३)** से शुरु करें. नियमित हों तथा दृढ़ रहें.

योगेश्वर श्रीकृष्ण ध्यान मुद्रा में

ॐ की साधना के विषय में उच्च श्रेणी के साधकों के लिए एक व्यवहारिक तरीका बताया जा रहा है. यह एक सशक्त तकनीक है जिसे वर्षों **ध्यान की कोई सहज बिधि** की साधना के पश्चात् ही करना चाहिए.

ॐ ध्वनि साधना तकनीक

चेतावनी : यह एक अत्यंत शक्तिशाली तकनीक है जिसे बिना किसी मार्गदर्शन या बिना किसी तैयारी, जैसे यम और नियम, के करने पर हानि भी हो सकती है. कृपया ॐ की साधना के पूर्व आधारभूत साधना अवश्य करें.

भगवान् कृष्ण द्वारा भगवद्गीता (८.१३) में ॐ की साधना के विषय में कहा गया है. यहां इसे विस्तारपूर्वक–वर्षों की साधना, योगशास्त्रों के अध्ययन एवं व्यवहारिक अनुभव के पश्चात्–सच्चे साधकों के लाभ हेतु कहा जा रहा है. अच्छे परिणाम के लिए साधना स्थल का अप्रकाशित (कोई अंधेरा कमरा), अगंधित (बिना धूप-अगरबती के) एवं शांत होना आवश्यक है. साधना के लिए उत्तम समय प्रातःकाल एवं सायंकाल (सूर्योदय एवं सूर्यास्त के पहले) के अलावा मध्याह्न एवं मध्यरात्रि के आधे घंटे पहले होता है. भगवद्गीता के श्लोक ६.१३ के अनुसार आरामदायक आसन में आंखें बंदकर बैठे.

प्रारंभ

(१) गहरी सांसें लें. साधना की सफलता के लिए प्रारंभ करने के पूर्व अपने गुरु, इष्टदेव, भगवान शिव या गणेश से निष्ठापूर्वक आर्शीवाद लें.

(२) धीरे-धीरे अपनी नाक से गहरी सांसें अंदर लें.

(३) सांसों को एक सेकण्ड के लिए रोकें.

(४) होंठों को गोलकर धीरे, कोमल, श्रव्य, लगातार गुंजन स्वर में ॐ का जाप (**ओ**.....**ओ**.....**म्**) पूरी सत्यनिष्ठा से करते हुए मुख से धीरे-धीरे सांस छोड़े. मन एवं आंखों से ॐकार ध्वनि को मस्तिष्क के अंदर, मध्य भौंहों से चार इंच अंदर, पीयूष ग्रंथि

(pituitary/master gland) में स्थित काल्पनिक स्रोत, छठा चक्र, पर केन्द्रित करें. पीयूष ग्रंथि के ऊपर (तालू) के स्थान को सप्तम चक्र कहते हैं. अपने मन और आंखों को सप्तम चक्र पर टिकाये रखें. यह कल्पना करें कि ॐकार ध्वनि-तरंगों की देदीप्यमान उर्जा छठा चक्र से सप्तम चक्र की ओर प्रसारित हो रही है और आपके पुरे मस्तिष्क में भरती जा रही हैं.

यहां महत्त्व इस बात का है कि घोष न हो, लेकिन आपका मन ध्वनि की पूर्णता में ध्वनि के केन्द्र में पूरी तरह से एकाकार होकर डूब जाये. जिस ध्वनि का आप इस्तेमाल कर विलीन होता जा रहा है. यह कोई कृत्रिम या जाये. यह साधारण ध्वनि नहीं है—वरन् वास्तविकता का प्रतीक है, ब्रह्माण्ड की पूर्णता है, और ब्रह्माण्डिय स्पंदन की ध्वनि है.

अंत

सांसों को छोड़ने के साथ-साथ इस प्रक्रिया की पुनरावृति पांच से ग्यारह बार पहले कदम (first step) से करें. इसके उपरांत इस प्रक्रिया को जारी रखें पर ॐकार के ध्वनि स्पंदन को मन में ही शांतिपूर्वक दस से पंद्रह मिनट तक ही करें. यदि मन ज्यादा भटकता हो तो मानसिक या वास्तविक जाप की गति को उसी के अनुसार तेज करें. इसी तरह एक से तीन महीने तक दिन में एक से दो बार तक अभ्यास करें. फिर धीरे-धीरे मानसिक जाप की संख्या को पच्चीस या उससे से ज्यादा मिनट तक बढ़ायें.

इस प्रक्रिया को करते समय किसी और मंत्र का जाप न करें. आप कुछ ही महीने में प्रगति का अनुभव करेंगे. कभी कभी आप अपने मन या व्यवहार में अचानक परिवर्तन भी अनुभव कर सकते हैं. ऐसे समय में साधना की आवृति-काल को कम कर दें.

चेतावनी : इस शक्तिशाली प्रयोग के संबंध में कुछ अपरिचित आशंकाएं भी हैं, इसलिए यह सभी के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है. यदि आप असहज महसूस करें तो साधना को कुछ समय के लिए स्थगित कर दें. साधना के समय गाड़ी चलाने या किसी अन्य यांत्रिक प्रयोग से बचें.

Download this technique in English from:
www.gita-society.com/omnic

ॐ तत् सत्

७. तैत्तिरियोपनिषद्

तैत्तिरीयोपनिषद् यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखा से संबंधित है. मुक्तिकोपनिषद् में १०८ उपनिषदों की सूची में इसका क्रम सातवां है. इसमें तीन अध्याय हैं और विभिन्न विषयों से संबंधित अनेकों खण्ड हैं. इसमें गद्य के कुल ५२ मंत्र हैं.

अध्याय १. ज्ञान का पाठ

खण्ड १. प्रार्थना

हरि ॐ! मित्र हमारे लिए मंगलमय हो. वरुण हमारे लिए मंगलमय हो. अर्यमा हमारे लिए मंगलमय हो. इन्द्र और वृहस्पति हमारे लिए मंगलमय हो. त्रिविक्रमरूप से विशाल पदों वाले विष्णु हमारे लिए मंगलमय हो. ब्रह्म को नमस्कार है. हे वायु! आपको नमस्कार है. आप ही वस्तुतः प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं. हे वायु! आप ऋत के अधिष्ठाता हो. इसीलिए मैं आपको ही सत्य मानता हूं.

वह (सर्वशक्तिमान परमेश्वर) मेरी रक्षा करे. (हमारे) आचार्यों की रक्षा करें. वह (सर्वशक्तिमान परमेश्वर) मेरी रक्षा करे. (हमारे) आचार्यों की रक्षा करें. ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

खण्ड २. उच्चारण पाठ

ॐ! अब हम उच्चारण के विज्ञान की व्याख्या करते हैं. इसमें वर्ण, स्वर, बल (प्रयत्न), उच्चारण, अभिव्यक्ति, स्वर का उतार चढ़ाव एवं अक्षरों के उच्चारण में क्रमबद्धता शामिल हैं. इस प्रकार उच्चारण के ६ अंगों के विषय में कहा गया है.

खण्ड ३. संहिता विषयक साधना

१. हम दोनों को गौरव प्राप्त हो. हम दोनों का ब्रह्म तेज भी बढ़े. अब हम संहिताओं के रहस्य को पांच अधिकरणों में व्याख्या करेंगे—समस्त लोक, स्वर्गलोक, विद्या, प्रजा एवं शरीर. प्रथम, लोक के संबंध में : पृथ्वी प्रथम रूप है, स्वर्ग द्वितीय रूप है, आकाश संधि है और वायु माध्यम है. इस प्रकार लोक के संबंध में सोचना चाहिए.

२. आगे दिव्य ज्योति के संबंध में : अग्नि प्रथम रूप है, सूर्य द्वितीय रूप है, जल संधि है और बिजली माध्यम है. इसी प्रकार दिव्य ज्योति के संबंध में सोचना चाहिए.

३. आगे विद्या के संबंध में : आचार्य प्रथम रूप है, शिष्य द्वितीय रूप है, विद्या संधि है और शिक्षण उन्हें जोड़ने का माध्यम है. यह विद्या के संबंध में है.

४. आगे प्रजा के संबंध में : माता प्रथम रूप है, पिता द्वितीय रूप है, संतान संधि है और जन्म (reproduction) माध्यम है.

५. आगे शरीर के संबंध में : अधर प्रथम रूप है, उपरी होंठ द्वितीय रूप है. वाणी संधि है और जिह्वा माध्यम है.

पांच महत् संहिताएं

शीर्षक	प्रथम रूप	द्वितीय रूप	माध्यमिक रूप (संघ)	तीनों को संयुक्त करने के साधन (माध्यम)
विश्व	पृथ्वी	स्वर्ग	अंतरिक्ष	वायु
नक्षत्र	अग्नि	सूर्य	जल	विद्युत्
ज्ञान	आचार्य	शिष्य	ज्ञान	शिक्षण
प्रजा	माता	पिता	संतान	प्रजनन
शरीर	अधर	अधरोधर	वाणी	जिह्वा

६. वहां अनेकों महान संहिताएं (वैदिक मंत्रों का संकलन) हैं. यहां पर कथित रूप में जो इन संहिताओं का मनन करता है वह संतान, पशु, ब्रह्म-तेज, भोज्य पदार्थ एवं स्वर्गिक सुखों से संपन्न हो जाता है.

खण्ड ४. बुद्धि के लिए प्रार्थना

१. जो वैदिक ऋचाओं में सर्वश्रेष्ठ है, जो अनेकों रूप धारण कर सकता है, जिसका आविर्भाव वेदों की अमर ऋचाओं से हुआ है, वह इन्द्र (ईश्वर) हमें बुद्धि प्रदान करे. हे ईश्वर! मैं आपकी कृपा से अमर हो जाउं. मेरा शरीर सक्षम हो जाए, मेरी वाणी मधुर हो जाए. मैं अपने कानों से सब कुछ सुन सकूं. आप लौकिक बुद्धि से ढकी हुई परमात्मा की निधि हैं. मेरे द्वारा सुने हुए उपदेश की रक्षा करें.

२. ॐ! बिना किसी देरी के मुझे अपने लिए सदैव विभिन्न प्रकार के उनी वस्त्र, गाएं, रोएंवाले भेड़ आदि पशु संपत्ति, खाने-पीने के पदार्थ प्रदान करें. जब वे प्राप्त हो जायें तो

उसमें वृद्धि करें और वृद्धि के पश्चात् उन्हें सुरक्षित रखें. (इसी उद्देश्य के लिए मेरी आहुति स्वीकार करें) स्वाहा! मेरे पास ब्रह्मचारी लोग हमेशा आते रहें. स्वाहा! मेरे पास ब्रह्मचारी लोग हमेशा आते रहें. स्वाहा! मेरे पास ब्रह्मचारी लोग हमेशा आते रहें.

३. मैं सभी लोगों में प्रसिद्ध हो जाउं. स्वाहा! मैं सभी धनिकों से भी धनी हो जाउं. स्वाहा! हे मेरे दयालु ईश्वर! मैं आपमें समाहित हो जाउं. स्वाहा! ओ मेरे दयालु ईश्वर! उस आप में मैं समाहित हो जाउं. स्वाहा! अनेक शाखाओं वाली नदी की तरह आपमें मैं अपने पापों को प्रवाहित कर रहा हूं. स्वाहा! हे संरक्षक! जिस प्रकार जल नीचे की ओर बढ़ता है, जिस प्रकार महीने वर्ष में मिल जाते हैं, उसी प्रकार मेरे पास अनेक दिशाओं से ब्रह्मचारीगण आये (इसी उद्देश्य से मैं आहुति समर्पित करता हूं) स्वाहा!

खण्ड ५. चार रहस्यमयी वचन

सभी धार्मिक कृत्यों के आरम्भ में -- भु, भुवः, स्वः– ये तीन व्याहृतियां प्रायः बोली जाती हैं. इसके अलावा एक चतुर्थ है जिसे महः कहते हैं जो कि महचमस के पुत्र को ज्ञात हुआ था. यही ब्रह्म है और यही आत्मा है. अन्य देवता इनके अंग हैं.

भूः ही वस्तुतः यह पृथ्वी लोक है, भुवः स्वर्गलोक है, स्वः अन्य लोक है. महः ब्रह्म है. ब्रह्म के द्वारा ही सभी लोक महान बनते हैं.

भूः वस्तुतः अग्नि है. भुवः वायु है. स्वः सूर्य है. महः चंद्र है. चंद्र के द्वारा ही वस्तुतः स्वर्गिक प्रकाश महान होते हैं.

भूः वस्तुतः ऋक् मन्त्र होते हैं. भुवः साम, स्वः यजुस्, और महः ब्रह्म है. ब्रह्म के द्वारा ही सभी वेद जनित हुए हैं.

भूः वस्तुतः प्राण है. भुवः अपान है, स्वः व्यान है और महः भोज्य पदार्थ है. भोजन के द्वारा ही सभी प्राणशील व्यक्ति महान होते हैं.

ये चारों चार गुणे हो जाते हैं. चार और चार कुल मिलाकर उपर्युक्त सोलह व्याहृतियां बन जाती हैं जिसका नीचे टेबल रूप में विवेचन है. ये सभी मिलकर संपूर्ण विश्व (विराट पुरुष) का निर्माण करते हैं जो व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों होता है. जो ये सब जानता है वह ब्रह्म को जानता है. सभी देवता उनके लिए बलि लेकर आते हैं.

सभी उक्तियों (व्याहृतियों) का विवेचन

व्याहृतियां	प्रथम चरण	द्वितीय चरण	तृतीय चरण	चतुर्थ चरण
भूः	पृथ्वी, earth	अग्नि	ऋक्	प्राण
भुवः	ग्रह, planets	वायु	साम	अपान
स्वः	नक्षत्र, galaxies	सूर्य	यजुर्	व्यान
महः	ब्रह्माण्ड, cosmos	चंद्र	ॐ, ब्रह्म	भोजन

नोट १३: ॐ भूर्भूवः स्वः का तात्पर्य है कि ॐ ही वह ब्रह्म का आदिम खगोलीय ध्वनि उर्जा है जिसने यह सब कुछ निर्माण किया है– यह पृथ्वी (भूः), ये ग्रह (भुवः), और ये नक्षत्र (स्वः).

खण्ड ६. सगुण ब्रह्म की साधना

१. सभी के अंतर्हृदय में विशुद्ध प्रकाशस्वरूप, अविनाशी, मनोमय, पुरुष रहता है. दोनों तालुओं के मध्य एक चुचूक की तरह यह जो लटक रहा है, उस (सुषुम्ना) का विस्तार केशों के मूलस्थान (ब्रह्मरन्ध्र) तक होता है जहां पर कपाल अलग होता है. वह सुषुम्ना ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग है. साधकों की आत्माएं सुषुम्ना से गुजरती हैं और अग्नि में विश्राम करती हैं जिसका प्रतिनिधित्व व्याहृति भूः करता है, जो वायु में विश्राम करता है, उसका प्रतिनिधित्व व्याहृति भुवः करता है.

२. वह सूर्य में विश्राम करता है और उसका प्रतिनिधित्व व्याहृति स्वः करता है. जो ब्रह्म में विश्राम करता है उसका प्रतिनिधित्व व्याहृति महः करता है. जो आत्मा को प्राप्त कर लेता है उसे मन का स्वामीत्व प्राप्त हो जाता है, उसे वाणी का स्वामीत्व प्राप्त हो जाता है. उसे दृष्टि का स्वामीत्व प्राप्त हो जाता है, उसे श्रोत्र का स्वामीत्व प्राप्त हो जाता है, उसे बुद्धि का स्वामीत्व प्राप्त हो जाता है. आगे वह ब्रह्म बन जाता है, जिसका शरीर आकाश है, जिसका स्वरूप सत् है जो प्राण में हर्षित होता है, जिसका मन आनंदमय होता है, जो शांत है और अमर है. इसी सगुण ब्रह्म की साधना की जानी चाहिए.

खण्ड ७. साधना के पंच स्वरूप

पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, अन्य लोक एवं मध्य लोक. अग्नि, वायु, आदित्य, चंद्र एवं नक्षत्र. जल, जड़ी-बूटी, वृक्ष एवं शरीर. भौतिक वस्तुओं का इतना ही वर्णन है. अब शरीर का वर्णन होता है. प्राण, व्यान, अपान, उदान एवं समान. नेत्र, श्रोत्र, मन, वाणी एवं स्पर्श. त्वचा, मांस, मांसपेशी, अस्थि एवं मज्जा. इसलिए एक ऋषि ने कहा है "जो भी कुछ है, उसके पांच प्रकार हैं." इसी पंच स्वरूप भौतिक कर्मों में मिलकर साधक एकाकार हो जाता है.

खण्ड ८. ॐ की साधना

ॐ ही ब्रह्म है. ॐ ही सर्वस्व है. ॐ अक्षर का प्रयोग अनुमोदन के लिए होता है. जब उन्हें यह कहा जाता है–ॐ का उच्चारण करो, तब वे उच्चारण करते हैं. वे साम मंत्र गाते हैं. वे ॐ सोम कहते हुए प्रार्थना करते हैं. ॐ कहते हुए अथर्वन् पुजारी भी अनुमति देता है. ॐ कहते हुए ब्रह्मा भी सहमति प्रदान करते हैं एवं अग्निहोत्र की आज्ञा देता है. जब एक वैदिक आचार्य ब्रह्म प्राप्त करने की ईच्छा करता है तब वह ॐ कहता है. एवं इसी प्रकार ईच्छा करते हुए वह ब्रह्म प्राप्त भी कर लेता है.

खण्ड ९. अनुशासन

वेदों के सत्य को सीखना और उसको प्रसारित करने के साथ-साथ सदाचार, आत्म-संयम, इन्द्रिय-निग्रह, संयम, याज्ञिक अग्नि का प्रज्वलन, अग्निहोत्र यज्ञ का संचालन, अतिथियों का आदर-सत्कार, सामाजिक कार्यों का संपादन, प्रजनन, अपने वंश को बढ़ाने की भी तैयारी करनी चाहिए. इन सभी का संपादन पूरी लगन से करना चाहिए.

इस विषय में एक अलग मंतव्य भी है. राथितर वंश के सत्यवचस के अनुसार केवल सत्यसाधना का ही अनुकरण करना चाहिए. पौरुशिष्टी के पुत्र तपोनित्य के अनुसार केवल तप का, जबकि मौदगल्य-पुत्र नाक के अनुसार केवल वेदों के पठन एवं शिक्षण का ही अनुपालन करना चाहिए क्योंकि वही तप है.

खण्ड १०. प्रत्येक दिन साधना के लिए एक मंत्र

१. मैं संसारवृक्ष का उच्छेद करने वाला हूं. मेरी कीर्ति पर्वत के शिखर की तरह उन्नत है. मेरा मूल परम शुद्ध ब्रह्म की तरह है. मैं आत्मा का परम शुद्ध ब्रह्म हूं. जो सूर्य में वास करता है उस अमरता के अमृत की तरह मैं आत्मा का सार हूं. मैं सबसे चमकीला खजाना हूं. मैं दिव्य बुद्धि हूं. मैं अजर एवं अमर हूं. परम ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत त्रिशंकु ने ऐसा ही कहा था.

खण्ड ११. शिष्यों को उपदेश

१. सदा सत्य बोलो. धर्म का आचरण करो. वेदाध्यन की उपेक्षा मत करो. आचार्य के लिए उपयुक्त उपहार देने के पश्चात् ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो एवं इसका ध्यान रखो कि वंश-परंपरा समाप्त न हो. सत्यमार्ग से तनिक भी विचलित न हो. धर्म मार्ग से विचलित न हो. व्यक्तिगत कल्याण की उपेक्षा मत करो. समृद्धि की उपेक्षा मत करो. वेदाध्ययन की उपेक्षा मत करो.

२. देवों और प्रेतों के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा मत करो. अपनी माता को भगवान के समान मानो. अपने पिता को भगवान के समान मानो. अपने आचार्य को भगवान के समान मानो. अपने अतिथियों को भगवान के समान मानो. जो भी कर्म दोषरहित हों वही कार्य करो, दूसरे नहीं. जो भी अच्छे कार्य हमारे द्वारा किये गये हैं, तुम्हारे द्वारा वही किये जाने चाहिए, दूसरे नहीं.

३. जो ब्राह्मण हमसे उच्चतर हैं, उन्हें आसन देकर उनका आदर करो. जो भी कुछ उन्हें अपनी क्षमता, विनम्रता, बिना भय एवं सहानुभूति के साथ देना हो, उन्हें श्रद्धा के साथ समर्पित करें, बिना श्रद्धा के नहीं.

४. यदि किसी कर्म या आचरण के लिए तुम्हारे मन में संदेह हो तो तुम्हें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कोई ब्राह्मण इस परिस्थिति में करता है. ये वैसे ब्राह्मण हैं जो निर्णय

करने में सक्षम हैं और अपने कार्यों के लिए दूसरे के द्वारा नहीं कहे जाते हैं. जो कठोर नहीं हैं, लेकिन धर्म को माननेवाले हैं. व्यक्तियों के प्रति तुम्हें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कोई ब्राह्मण उस परिस्थिति में करता है. ये वैसे ब्राह्मण हैं जो निर्णय करने में सक्षम हैं और जो अपने कार्यों को दूसरे के द्वारा नहीं करवाते हैं, जो कठोर नहीं है, लेकिन धर्म को माननेवाले हैं. यही नियम है. यही शिक्षा है. यही वेदों का रहस्य है. यही ईश्वर की आज्ञा है. इसे तुम्हें मानना चाहिए. इसी का आचरण करना चाहिए.

खण्ड १२. प्रार्थना

मित्र हमारे लिए शुभ हों, वरुण हमारे लिए शुभ हों, आर्यमन् हमारे लिए शुभ हों, इन्द्र-बृहस्पति हमारे लिए शुभ हों. विशाल चरणों वाले विष्णु हमारे लिए शुभ हों. ब्रह्म को नमस्कार है! हे वायु आपको नमस्कार है! आप ही दृश्य ब्रह्म हो. मैं आपको सही मानता हूं. मै सत्य कहता हूं. मुझे और मेरी आचार्य की रक्षा करें!

अध्याय २. ब्रह्मानन्द, ब्रह्म का आनन्द
(आत्मा के पांच आवरण)

खण्ड १. अन्न या शरीर के आवरण

ॐ! मित्र हमारे लिए शुभ हों, वरुण हमारे लिए शुभ हों, आर्यमन् हमारे लिए शुभ हों, इन्द्र-बृहस्पति हमारे लिए शुभ हों. विशाल चरणों वाले विष्णु हमारे लिए शुभ हों. ब्रह्म को नमस्कार है! हे वायु! आपको नमस्कार है! आप ही दृश्य ब्रह्म हो. मैं आपको सही मानता हूं. मै आप ही को सत्य मानता हूं. ये मेरे आचार्य की रक्षा करें, मेरी रक्षा करें. मेरे आचार्य की रक्षा करें.

ॐ! ब्रह्म हमदोनों की रक्षा करें. ब्रह्म हमदोनों को ज्ञान का फल प्रदान करें. हम दोनों को वो उर्जा मिले जिससे हम ज्ञान प्राप्त कर सकें. हमदोनों जो भी अध्ययन करें उससे सत्य उजागर हो. हमदोनों को एक दूसरे के प्रति कोई वैमनस्य न हो.

ॐ शांति: ॐ शांति: ॐ शांति:

१. जो ब्रह्म को जानता है वही परब्रह्म को प्राप्त करता है. उसी के संबंध में ये मंत्र कहा गया है "**ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है (सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म).** जो प्राणियों के हृदयरूपी गुहा में छुपा हुआ है, और उच्च आकाश में सर्वव्यापी ब्रह्म के साथ होने के कारण, उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर परमानन्द की प्राप्ति कराता है."

२. ब्रह्म (आत्मा) से आकाश तत्त्व का जन्म हुआ, आकाश तत्त्व से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति, वनस्पति से अन्न और अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं.

३. पुरुषरूप पक्षी निश्चित तौर पर अन्नरस का सार है. यही उसका सर है, उसकी दाहिनी भुजा या दाहिना पंख है, बायीं भुजा या बांया पंख है, यह धड़ उसका शरीर है, जो उसके नाभिरूपी पूंछ पर आधारित है. इस तरह प्राणी का सारा शरीर ही अन्न से बना है.

खण्ड २. प्राणमय आवरण

१. जो भी जीव-जन्तु इस पृथ्वी पर रहते हैं वह सभी अन्न से उत्पन्न होते हैं. अन्न से ही वे जीवित रहते हैं और अंत में अन्न में ही वे वापस लौट जाते हैं. अन्न ही सभी भूतों में श्रेष्ठ है और इसीलिए उसे रामबाण संजीवनी (अन्नम्) भी कहा जाता है. (भोज्य पदार्थों को सबसे उत्तम औषधि माना गया है.)

जो अन्न की ब्रह्म के समान पूजा करते हैं, वे समस्त अन्न को प्राप्त कर लेते हैं. सभी जीवों में अन्न ही सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए इसे रामबाण औषधि कहते हैं. अन्न से ही सभी जीवों का जन्म होता है. अन्न से ही जन्म लेने के पश्चात् उनकी वृद्धि होती है. चूंकि इसे जीवों द्वारा खाया जाता है और यह स्वयं भी जीवों को खाता है इसीलिए इसे अन्न कहा जाता है. (**जीवो जीवस्य जीवनम्**) (म.भा. 12.15.20, भा.पु. 1.13.47).

२. निश्चय ही उस अन्नमय मनुष्य शरीर के भीतर रहनेवाला प्राणमय शरीर अलग है. जो समस्त अन्न का सार है, लेकिन इसी शरीर में है, जो प्राणवायु से बना है. जो अन्नमय कवच प्राणवायु से व्याप्त है. इसका आकार भी पुरुष की तरह है. उस प्राणमय आत्मा का प्राण सिर है. व्यान दाहिना पंख है, अपान बांया पंख है, आकाश इसका धड़ है और इसका आधार पृथ्वीरूपी पूंछ है. प्राण सारे शरीर में व्याप्त रहता है. प्राण सारे शरीर का आधार (support) है, भोजन है.

खण्ड ३. मनोमय आवरण

१. देवता भी प्राण के कारण ही सांस लेते हैं. मानव एवं पशु भी यही काम करते हैं क्योंकि प्राण सभी जीवों के लिए जीवन है. इसीलिए इसे सभी का प्राण कहा जाता है. जो प्राण की पूजा ब्रह्म के रूप में करते हैं वे पूरा जीवन जीते हैं क्योंकि प्राण ही सभी का जीवन है.

२. निश्चय ही इस प्राणमय पुरुष से भिन्न उसके भीतर रहनेवाला मनोमय प्राण की आत्मा है. उस मनोमय शरीर से यह प्राणमय शरीर व्याप्त है. इसका आकार भी मानव की तरह ही है. पहले जैसा मानवाकार था वैसा अब भी मानवाकार है. यजुर्वेद मनोमय पुरुष का सर है, ऋग्वेद इसका दाहिना पंख है. सामवेद इसका बांया पंख है. शिक्षा इसका धड़ है, अथर्ववेद एवं अंगिरस की पूंछरूपी ऋचाएं इसका आधार है. प्राण सारे शरीर का आधार (support) है और मन प्राण का आधार है.

खण्ड ४. बुद्धि या विज्ञान का आवरण

१. उस ब्रह्म के आनंद का ज्ञाता, जो कि मन एवं वाणी से परे है, किसी से भी भयभीत नहीं होता है.

२. निश्चय ही उस मनोमय पुरुष में अंतर्निहित आत्मा **विज्ञानमय** (बुद्धि) है. उस विज्ञानमय आत्मा से यह मनोमय शरीर व्याप्त है. निस्संदेह इसका आकार भी मानव जैसा है. जैसा मानवाकार पहले का है, वैसा ही मानवाकार दूसरे का भी है. श्रद्धा इसका सिर है, सदाचार ही इसका दाहिना पंख है, सत्य इसका बांया पंख है, योग इसका धड़ है, और पूंछरूपी महः इसका आधार है. बुद्धि मन का आधार (support) है.

खण्ड ५. ज्ञान या आनन्द का आवरण

१. ज्ञान ही सारे यज्ञ करता है. यह सभी कार्य भी करता है. यह अन्य सभी कर्म भी करता है. सभी देवता ब्रह्म के रूप में श्रेष्ठ ज्ञान की पूजा करते हैं. यदि पुरुष ज्ञान को ब्रह्म के रूप में जानता है और वह इस मार्ग से विचलित नहीं होता तो वह शरीर में ही सारे पापों को छोड़ समस्त भोगों का अनुभव करता है.

२. निश्चय ही इस **विज्ञानमय** जीवात्मा में अंतर्निहित **आनंदमय** परमात्मा है. उससे यह विज्ञानमय पूर्णतः व्याप्त है. वह आनंदमय परमात्मा भी पुरुष के समान आकार वाला है. जैसा पहले का मानवाकार है, वैसा ही दूसरे का भी आकार है. उस आनंदमय का प्रिय ही सिर है, आमोद इसका दाहिना पंख है, प्रमोद इसका बांया पंख है. आनंद इसका धड़ है और ब्रह्मरूपी पूंछ ही इसका आधार है. बुद्धि का आधार ज्ञान-विज्ञान है.

खण्ड ६. ब्रह्म सभी का स्रोत है

१. यदि कोई मनुष्य ब्रह्म को "नहीं है", ऐसा मानता है, तो वह वैसा हीं हो जाता है. उसी तरह यदि कोई ब्रह्म को है, ऐसा मानता है तो वह ऐसा हो जाता है. इसको ज्ञानीजन ऐसा ही समझते हैं.

Paramātmā (Purushottama) > Atmā (or Purusha) > Prāna (or Energy) > Prakriti (or Matter, condensed E)

परिशिष्ट: *बड़ा छोटे का आधार और निर्देशक (support and guide) होता है :*

ब्रह्म > आनन्द > बुद्धि या विज्ञान > मन > प्राण > शरीर

जैसे : बुद्धि मन का आधार और निर्देशक है. और ब्रह्म सभी का आधार और निर्देशक है.

२. इसके उपरांत निम्नलिखित प्रश्न उठता है : क्या वह कोई जो ब्रह्म को जानता है, वह इस जीवन को त्यागने के पश्चात् उस लोक को प्राप्त करता है या नहीं? क्या अज्ञानी उस लोक को प्राप्त करता है या नहीं?

नोट १४: इस प्रश्न का उत्तर शिष्यों को प्राप्त करने के लिए छोड़ दिया गया है.

३. उस परमेश्वर ने विचार किया : मैं जन्म प्राप्त कर बहुत हो जाउं. उसने तपस्या की. तपस्या करने के पश्चात्, उसने यह जो भी कुछ है, इन सभी का निर्माण किया. इन सभी का निर्माण करने के पश्चात् उसने इसमें प्रवेश किया. इसमें प्रवेश करने के पश्चात् वह प्रकट और अप्रकट, विवेचित और अविवेचित, समर्थित और असमर्थित, बुद्धिमान और अबुद्धिमान, वास्तविक और अवास्तविक दोनों हो गया. ब्रह्म का सत् अंश ही यह सब कुछ हो गया. ज्ञान का आधार ब्रह्म है.

खण्ड ७. निर्भीक ब्रह्म

१. प्रारंभ में किसी का भी अस्तित्व नहीं था. 'ब्रह्मसे ही ब्रह्मका जन्म हुआ', आज जिसकी सत्ता है. उसीसे उसका सृजन हुआ जो पहले से ही अस्तित्व में था. ब्रह्म अपने को अपने से ही रचा, इसलिए ब्रह्म को 'स्वयंभू' कहा जाता है.

२. जो स्वयंभू है वह आनन्दमय है. निश्चित तौर पर उसे जानने के बाद पुरुष आनंदित और निर्भय हो जाता है. प्राण और अपान को कौन निर्देशित करता यदि हृदय-आकाश में आनंद नहीं होता? ब्रह्म वस्तुतः इसीलिए ही सत्ता में है क्योंकि यही एकमात्र आनंद प्रदान कर सकता है.

३. जब व्यक्ति निर्भीक होकर इसे जान लेता है, जो अदृश्य, आध्यात्मिक, अवर्णनीय एवं समर्थन-विहीन है, तब वह निर्भयपद प्राप्त कर लेता है. **यदि कोई ब्रह्म और उनकी रचना में थोड़ा भी अंतर मानता है तो उसके लिए (जन्म-मृत्यु का) भय होता है. वह भय ज्ञाता के लिए भी होता है जो अच्छी तरह ब्रह्म-चितन नहीं कर पाता.**

खण्ड ८. ब्रह्मानन्द

१. उसके भय से वायु प्रवाहित होता है, उसी के भय से सूर्योदय होता है, उसके भय से अग्नि, इन्द्र और यम, जो पांचवा है, अपने-अपने कार्य करते हैं.

२. ब्रह्मानन्द के विषय में यह एक विचार है. मान लो कि कोई युवा, जो कि सज्जन, वेदाध्यायी हो, गठीले शरीरवाला, बलिष्ठ हो, फिर उसे यह धन से परिपूर्ण संपूर्ण पृथ्वी प्राप्त हो जाये तो वह मनुष्यलोक का एक ईकाई आनन्द है. सौगुना मनुष्यलोक का आनंद मानव-गंधर्व के आनंद की एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

३. मानव-गंधर्व का सौगुना आनंद, देवगंधर्वों के आनंद की एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

४. देव-गंधर्वों का सौगुना आनंद चिरस्थायी पितृलोक में रहनेवाले पितरों के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

५. चिरस्थायी पितृलोक में रहनेवाले पितरों का सौगुना आनंद, वह आजानज नामक देवताओं के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

६. ये आजानज नामक देवताओं का सौगुना आनंद, कर्मदेव नामक देवताओं के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

७. कर्मदेव नामक देवताओं का सौगुना आनंद, देवताओं के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

८. ये जो देवताओं का सौगुना आनंद है, वह इन्द्र के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

९. इन्द्र का सौगुना आनंद भी वृहस्पति के आनंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

१०. वृहस्पति का सौगुना आनंद भी प्रजापति ब्रह्मा के आनंद का एक इकाई मात्र है. यह आनंद भी वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद से कम है.

११. ब्रह्मा का सौगुना आनंद भी ब्रह्मानंद का एक ईकाई मात्र है. यह आनंद वेदों के ज्ञाता, जो सभी इच्छाओं से रहित है, का आनंद के बराबर है.

१२. जो भी यहां पुरुष में है या जो भी यहां सूर्य में है–दोनों एक ही है और समान है. जो भी यह जानता है, वह इस लोक को त्यागने के पश्चात् उस अन्नमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह उस प्राणमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह उस मनोमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह उस विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है. वह उस आनंदमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है.

खण्ड ९. अच्छाई और बुराई का विलय

१. जो भी ब्रह्मानंद को जानता है, जो कि मन और वाणी से परे है, वह कभी भी किसी चीज से नहीं डरता है.

२. उस पुरुष को इस विचार से डर नहीं लगता कि "मैंने वह सब कुछ नहीं किया जो कि श्रेष्ठ है. मै पापाचरण क्यों करता हूं? जो भी यह जानता है वह आत्मा की रक्षा

करता है. जो पुण्य और पाप दोनों कर्मों को इस प्रकार मानता है, वस्तुतः वह आत्मा की रक्षा करता है. ऐसा ही यह उपनिषद् है जिसमें ब्रह्म का गुप्त ज्ञान छुपा हुआ है.

ॐ. ब्रह्म हमदोनों की रक्षा करे, ब्रह्म दोनों को ज्ञान का फल प्रदान करे. हमदोनों ही ज्ञान प्राप्त करने की उर्जा प्राप्त करें, हमदोनों ही जिसका अध्ययन करें उससे सत्य प्रभासित हो, हमदोनों ही एक दूसरे के प्रति कोई द्वेष न रखें.

अध्याय ३. वरुण-भृगु संवाद

खण्ड १. ब्रह्म की परिभाषा तथा तपस्या से ब्रह्म की प्राप्ति

ॐ! ब्रह्मा हमदोनों की रक्षा करे, ब्रह्म दोनों को ज्ञान का फल प्रदान करे. हमदोनों ही ज्ञान प्राप्त करने की उर्जा प्राप्त करें, हमदोनों ही जिसका अध्ययन करें उससे सत्य प्रभासित हो, हमदोनों ही एक दूसरे के प्रति कोई द्वेष न रखें. ॐ शांतिः! शांतिः! शांतिः

१. हरि ॐ! वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता से कहा– "भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश प्रदान करें". वरुण ने कहा : 'अन्न, प्राण, नेत्र, मन एवं वाणी ब्रह्म है'.

उन्होंने उससे आगे कहा : "निश्चय ही ये प्रत्यक्ष प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अंत में इस लोक से प्रयाण करते हुए प्रवेश करते हैं. उसे ज्ञात करने की कोशिश करो, वही ब्रह्म है."

खण्ड २. शरीर के रूप में ब्रह्म

भृगु ने तपस्या (ब्रह्म-विचार) की, और तपस्या करने के पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि **अन्न ब्रह्म है**. अन्न से ही वस्तुतः इनका जन्म होता है, और इसी से ये जीवित रहते हैं और इसी में मिल जाते हैं.

इसे ज्ञात कर वह अपने पिता के पास पुनः गया और उनसे पूछा, भगवन्! मुझे ब्रह्म के विषय में बतायें.

उन्होंने अपने पुत्र से कहा, **ब्रह्म को तपस्या के माध्यम से जानो. ब्रह्म को जानने का तपस्या (अर्थात् गहन ब्रह्म-विचार) ही माध्यम है.**

खण्ड ३. प्राण के रूप में ब्रह्म

उसने तपस्या की. तपस्या करने के पश्चात्–

उसे ज्ञात हुआ कि **प्राण ही ब्रह्म है**, क्योंकि प्राण से ही सभी लोगों का जन्म होता है. जन्म के पश्चात् प्राण के द्वारा ही वे जीवित रहते हैं, प्राण में प्रवेश करते हैं और उसी में

मिल जाते हैं. यह जानकर वह अपने पिता के पास पुनः गया और कहा, भगवन्! आप मुझे ब्रह्म के विषय में बतायें.

उन्होंने अपने पुत्र से कहा, ब्रह्म को तपस्या के माध्यम से जानो. ब्रह्म को जानने का तपस्या ही माध्यम है.

उसने पुनः तपस्या की. तपस्या करने के पश्चात्–

खण्ड ४. मन के रूप में ब्रह्म

उसे ज्ञात हुआ कि मन ही ब्रह्म है, क्योंकि मन से ही सभी लोगों का जन्म होता है. जन्म के पश्चात् मन के द्वारा ही वे जीवित रहते हैं, मन में प्रवेश करते हैं और उसी में मिल जाते हैं. यह जानकर वह अपने पिता के पास पुनः गया और कहा, भगवन्! आप मुझे ब्रह्म के विषय में बतायें.

उन्होंने अपने पुत्र से कहा, ब्रह्म को तपस्या के माध्यम से जानो. ब्रह्म को जानने का तपस्या ही माध्यम है.

उसने पुनः तपस्या की. तपस्या करने के पश्चात्–

खण्ड ५. बुद्धि के रूप में ब्रह्म

उसे ज्ञात हुआ कि बुद्धि या विज्ञान ही ब्रह्म है, क्योंकि विज्ञान से ही सभी लोगों का जन्म होता है. जन्म के पश्चात् विज्ञान के द्वारा ही वे जीवित रहते हैं, अन्त में विज्ञान में प्रवेश करते हैं और उसी में मिल जाते हैं. यह जानकर वह अपने पिता के पास पुनः गया और कहा, भगवन्! आप मुझे ब्रह्म के विषय में बतायें. उन्होंने अपने पुत्र से कहा, ब्रह्म को तपस्या के माध्यम से जानो. ब्रह्म को जानने का तपस्या ही माध्यम है.

उसने पुनः तपस्या की. तपस्या करने के पश्चात्–

खण्ड ६. आनन्द के रूप में ब्रह्म

उसे ज्ञात हुआ कि आनन्द ही ब्रह्म है, क्योंकि आनन्द से ही सभी लोगों का जन्म होता है. जन्म के पश्चात् आनन्द के द्वारा ही वे जीवित रहते हैं, आनन्द में प्रवेश करते हैं और उसी में मिल जाते हैं.

यह ज्ञान वरुण के द्वारा सिखाया गया और भृगु के द्वारा सीखा गया. ब्रह्म परमाकाश और हृदय में स्थित है. जो यह जानता है ब्रह्मानन्द में स्थित है. वह अन्न का संग्रहकर्ता एवं भोक्ता है. इस प्रकार वह प्रजा से, पशुओं से और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर प्रसिद्ध हो जाता है.

भ.गी. ७.१९ में भी यही कहा गया है– वासुदेवः सर्वम् इति.

खण्ड ७. अन्न का महत्त्व (क)

ब्रह्मज्ञाता को कभी भी अन्न को नष्ट नहीं करना चाहिए. यही व्रत है. प्राण वस्तुतः अन्न है, शरीर भोक्ता है. यह शरीर प्राण पर आधारित है और प्राण शरीर पर आधारित है. एक शरीर दूसरे शरीर पर आधारित रहता है. **इसी प्रकार अन्न पर अन्न आधारित है.**

जो यह जानता है कि अन्न पर आधारित अन्न है. वह अन्न का संग्रहकर्ता एवं भोक्ता है. इस प्रकार वह प्रजा से, पशुओं से और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर प्रसिद्ध हो जाता है.

खण्ड ८. भोजन का महत्त्व (ख)

ब्रह्मज्ञाता को कभी भी अन्न को नष्ट नहीं करना चाहिए. यही कर्तव्य है. जल वस्तुतः अन्न है, अग्नि अन्न का भोक्ता है. अग्नि जल पर आधारित है और जल अग्नि पर आधारित है. इस प्रकार अन्न पर आधारित अन्न है.

जो यह जानता है कि अन्न पर आधारित अन्न है. वह अन्न का संग्रहकर्ता एवं भोक्ता है. इस प्रकार वह प्रजा से, पशुओं से और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर प्रसिद्ध हो जाता है.

खण्ड ९. भोजन का महत्त्व (ग)

ब्रह्मज्ञाता को अन्न संग्रह करना चाहिए. यही व्रत है.
पृथ्वी वस्तुतः अन्न है, आकाश अन्न का भोक्ता है. आकाश पृथ्वी पर आधारित है और पृथ्वी आकाश पर आधारित है. इस प्रकार अन्न पर आधारित अन्न है.

जो यह जानता है कि अन्न पर आधारित अन्न है. वह अन्न का संग्रहकर्ता एवं भोक्ता है. इस प्रकार वह प्रजा से, पशुओं से और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर प्रसिद्ध हो जाता है.

खण्ड १०. ब्रह्म-साधना

उसे किसी भी अतिथि को आश्रय के लिए मना नहीं करना चाहिए. यही उसका व्रत है. उसे किसी भी तरह यथार्थ अन्न का प्रबंध करना चाहिए. अतिथियों को उसे कहना चाहिए कि भोजन आपके लिए ही तैयार किया गया है.

१. यदि कम उम्र में अन्नदान किया जाता है, तो अन्न देनेवाले को कम उम्र में ही अन्न प्राप्त हो जाता है, यदि मध्यम उम्र में अन्नदान किया जाता है तो अन्न देनवाले को मध्यम उम्र में अन्न प्राप्त होता है. यदि वृद्धावस्था में अन्न दिया जाता है तो वृद्धावस्था में अन्न प्राप्त होता है. जो यह जानता है उसे उपर्युक्त फल प्राप्त होता है.

२. परमात्मा वाणी में रक्षा शक्ति के रूप में रहता है. प्राण और अपान में प्राप्ति और रक्षा के रूप में, हाथों में कार्य के रूप में, पैरों में गति के रूप में, और गुदा में उत्सर्जन के

रूप में रहता है. यह मानुषी ब्रह्म साधना है (सभी शारीरिक कार्यो के पीछे ब्रह्म का ही सहयोग होता है).

अब दैवी ब्रह्म साधना का वर्णन करते है. वह परमात्मा वृष्टि में, तृप्ति में, बिजली में, शक्ति के रूप में स्थित है.

३. वह पशुओं में, श्रद्धा के रूप में, तारों में प्रकाश के रूप में, उपस्थ में प्रजनन के रूप में, वीर्यरूप अमृत, आनंद एवं आकाश में सभी के आधार के रूप में स्थित है.

वह प्रतिष्ठा (सभी का आधार) है. उसकी इसी रूप में आराधना करने से साधक प्रतिष्ठावान हो जाता है. इस प्रकार उपासना करने से वह भी महान हो जाता है. यदि वह मन के रूप में ब्रह्म की आराधना करता है तो वह भी मननशक्ति से संपन्न हो जाता है.

४. वह नमस्कार के योग्य है, इस प्रकार उपासना करने से समस्त काम-भोग पदार्थ उसके आगे विनीत हो जाती हैं. उसे ब्रह्म के रूप में समझने से उपासक ब्रह्मवान् हो जाता है. उसे ब्रह्म को विनाशक शक्ति के रूप में मानने पर उपासक के प्रति द्वेष रखनेवाले उनके शत्रु और अनिष्ट चाहनेवाले अप्रिय बन्धुजनों का विनाश हो जाता है.

५. यह जो इस मनुष्य में है और जो वह सूर्य में भी है, वह दोनों का अंतर्यामी एक ही है. जो इस प्रकार का तत्त्वज्ञानी है वह मृत्योपरांत इस अन्नमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह प्राणमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह मनोमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह आनन्दमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है. वह इच्छानुसार रूप धारण कर सभी लोकों में विचरण करता हुआ भोग करता है और अद्वैत ब्रह्म का इस प्रकार भजन करता है:--

६. मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं. मैं अन्न का भोक्ता हूँ. मैं अन्न का भोक्ता हूँ. मैं अन्न का भोक्ता हूँ. मैं संयोगकर्ता हूं. मैं संयोगकर्ता हूं. मैं संयोगकर्ता हूं.

मैं सत्य का प्रथम-जन्मा अन्न या पदार्थ (food or matter) हूं, देवताओं से भी पूर्व विद्यमान अमृत की नाभि हूं. जो कोई मुझे देता है, वह मेरी रक्षा करता है. मैं अन्नस्वरूप बनकर उस अन्न के भोक्ता को निगल जाता हूं, जो अन्न को बिना एक दूसरे को बांटे हुए खाता है (भ.गी. ३.१२).

मैं परम ईश्वर के रूप में, संपूर्ण लोकों पर शासन करता हूं. मैं सूर्य की तरह प्रकाशमान हूं. जो भी यह ज्ञान प्राप्त करता है उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है. ऐसा ही इस उपनिषद् का कहना है.

ॐ तत् सत्

सृष्टि-चक्र के आदि और अन्त में एकमात्र परब्रह्म श्रीकृष्ण ही शेष रहते हैं

८. ऐतरेयोपनिषद्

ऐतरेयोपनिषद् उन प्राचीन एवं प्रारंभिक उपनिषदों में से एक है जिसके उपर आदि शंकर एवं मध्व जैसे आचार्यों ने टीकाएं लिखी हैं. यह ऋग्वेद से संबंधित एक प्रमुख उपनिषद् है. यह प्रमुख रूप से सृष्टि एवं आत्मा के पुनर्जन्म सिद्धान्त के संबंध में व्याख्या करता है.

अध्याय १. सृष्टि सिद्धांत

खण्ड १. जीव की सृष्टि

१. नवीन सृष्टि-चक्र के प्रारंभ (या महाकल्प) में, जिसकी अवधि ३११ ट्रिलियन वर्ष होती है, परब्रह्म (जिसे साधारण भाषा में आत्मा भी कहते हैं) के अलावा कुछ भी नहीं रहता है. आत्मा के अलावा कुछ भी नहीं है. आत्मा का स्वाभाविक गुण विश्व निर्माण है (मु.उ. १.१.७).

२. इस प्रकार आत्मा सभी वस्तुओं का निर्माण करता है, जिसमें तीनों लोक भी शामिल हैं– पृथ्वी (भूः), ग्रह (भुवः), एवं नक्षत्र (स्वः).

३. आत्मा ने सोचा– निश्चय ही ये वे लोक हैं जिनका निर्माण मैंने किया है. अब मैं संपूर्ण विश्व के लोकपाल का निर्माण करता हूं जो कि सभी लोकों के नियंता होंगे. पहले ब्रह्माण्ड में केवल नार (जल या महाप्रलय के पश्चात् शेष उर्जा-सागर) ही था. इसी उर्जा-सागर में कमल के उपर समस्त लोकों के स्वामी, आदि नारायण या हिरण्यगर्भ पुरुष की उत्पत्ति हुई.

४. आत्मा ने उस हिरण्यगर्भ पुरुष के विषय में लक्ष्य करके अपने संकल्प से पहले मुख उत्पन्न किया. मुख से वाणी का उद्भव हुआ और वाणी से अग्नि. तत्पश्चात् दो नासिका विवर आये जिससे घ्राण शक्ति पैदा हुआ. घ्राण शक्ति से वायु आया. पुनः दोनों नेत्र आये. नेत्रों से दृष्टि आई और दृष्टि से सूर्य. पुनः श्रोत्र उत्पन्न हुए, श्रोत्र से श्रवण शक्ति. फिर त्वचा आई, उससे रोम उत्पन्न हुए. रोम से औषध एवं वनस्पति उत्पन्न हुए. फिर हृदय प्रकट हुआ और उससे मन बना और मन से चंद्रमा. फिर नाभि उत्पन्न हुआ, उस नाभि से अपान और अपान से मृत्यु. पुनः प्रजनन अंग आये. उसमें वीर्य आया. वीर्य से जल और इस अंग के नियन्ता.

नोट १५. आरंभ में ज्ञानेन्द्रियों एवं देवी-देवताओं से इन्द्रियों के उत्पन्न होने के विषय, जैसा लिखा गया है, उससे आश्चर्य हो सकता है, पर विकास के संदर्भ में अंग पहले उत्पन्न होते हैं और उस अंग को प्रयोग में लाने की शक्ति की उत्पत्ति एवं उसका विकास धीरे-धीरे बाद में होता है.

खण्ड २. शरीर निर्माण

१. इस प्रकार नारायण या हिरण्यमय पुरुष का आविर्भाव हुआ. उसे एक शरीर की जरुरत हुई जिसमें वह रह सके, भोजन कर सके और पानी पीकर जीवीत रह सके.

२. भगवान ने उसके लिए एक गाय और घोड़े को उत्पन्न किया. उन्होंने कहा, ये उनके लिए पर्याप्त नहीं है.

३. जब परमात्मा ने उनके लिए एक मानव जीव को उत्पन्न किया तो वे अति प्रसन्न हुए और उसे स्वीकार कर लिया. तब ईश्वर ने कहा, अब आप अपने-अपने निवास स्थल में प्रवेश करो.

४-५. अग्निदेव वाणी के अंग बनकर मुख में प्रवेश कर गये. वायु प्राण बनकर नासिका में प्रवेश कर गया. सूर्य दृष्टि के रूप में नेत्रों में समा गया. श्रोत्र शक्ति कर्णों में प्रवेश कर गया, औषध एवं वनस्पति देव मिट्टी में प्रवेश कर गये. केश मानवीय त्वचा में समा गया. चंद्रमा मन बनकर हृदय में प्रवेश कर गया. मृत्युदेव उच्छ्वास बनकर नाभि में प्रवेश कर गये. जल के देवता वीर्य बनकर प्रजनन अंगों में आ गये. क्षुधा-पिपासा आमाशय में चली गई. जिस किसी भी देवता को बलि, अर्घ्य दी जाने लगी क्षुधा-पिपासा उसका अंश प्राप्त करने लगे.

खण्ड ३. अन्नोत्पादन

१. समस्त लोकों एवं देवताओं के निर्माण के पश्चात् जगत-नियन्ता ईश्वर ने उनके लिए अन्नोत्पादन किया.

२. ईश्वर ने आधारभूत पंच तत्त्वों के विषय में सोचा और इन्हीं पंच तत्त्वों से अन्नोत्पादन किया.

३-९. इस प्रकार से उत्पादित अन्न वाणी, नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, मन या किसी अन्य अंगों के माध्यम से नहीं खाया जा सका.

१०. इसलिए अन्न से जीवन को आधार देने के लिए अपान वायु उत्पन्न किया गया.

११-१२. ईश्वर ने सोचा, ये सारे मेरी अनुपस्थिति में कैसे जीवित रह सकते हैं? इसलिए जगत-नियन्ता सभी जीवों के शरीर में कपाल से प्रवेश कर जीवन को आधार देने लगे.

अध्याय २: आत्मा का पुनर्जन्म

१. जो आत्मा पुनर्जन्म-चक्र में प्रवेश करती है वह वीर्य बन जाती है. वीर्य सभी अंगों से एकत्रित सार है. मनुष्य अपने शरीर में अपने ही सार को वीर्य के रूप में धारण करता है.

२. नारी के साथ वीर्य उसी के अपने अंग के रूप में एक हो जाता है. यह उसका पहला जन्म है. इसीलिए उसका किसी भी रूप में कोई नुकसान या वहिष्कार नहीं होता है. वह पुरुष के इस सार को अपने अंदर पोषती है.

३. माता अपने शिशु को गर्भ में धारण करती है और पिता लालन-पालन में गर्भाधान के पूर्व एवं पश्चात् उसकी सुविधा का ध्यान रखता है. पुत्र जो स्वयं पिता का रूप होता है वह पिता के पवित्र कार्यों को आगे बढ़ाता है. यह एक पिता के दूसरे जन्म स्वरूप होता है.

४. पिता अपने कर्तव्यों के पूर्ण निर्वहण के पश्चात् इस लोक से विदा लेता है. पश्चात् उसका पुनर्जन्म होता है जो उसका तीसरा जन्म है.

नोट १६: यह कहा जाता है कि वर्तमान शरीर को त्यागने से पूर्व आत्मा वर्तमान भौतिक शरीर के सूक्ष्म तत्वों से एक सूक्ष्म शरीर का निर्माण करता है. वह उसी शरीर में रह कर पुनर्जन्म का इंतजार करता रहता है. इस प्रक्रिया को भगवद्गीता (भ.गी. १५.०८) में भी लिखा गया है.

५. एक निपुण जीव को माता के गर्भ में भी आत्मा की यथार्थ प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए. अपने अनगिनत पूर्व जीवन में अर्जित शुद्धि एवं मीमांसा के प्रभाव से वामदेव ऋषि को माता के गर्भ में अकस्मात् ही ज्ञान प्राप्त हो गया था.

अध्याय ३. ब्रह्म प्रकाश

१. वह कौन है जिसका हम आत्मा के रूप में ध्यान करते हैं? परब्रह्म या ब्रह्म?

२. हम असीम एवं परम यथार्थ परब्रह्म का ध्यान करते हैं. इसे साधारण तौर पर आत्मा भी कहा जाता है जिसके माध्यम से एक जीवित प्राणी अनेक रूपों को देखता है, आवाजें सुनता है, सूंघता है, बोलता है, स्वाद लेता है और सही या गलत की पहचान करता है.

३-४. आत्मा को प्रज्ञा, ज्ञान, शक्ति, दर्शन, स्मृति, याद, सोच, इच्छा आदि के रूप में भी जाना जाता है. आत्मा ब्रह्मा, इन्द्र, अन्य देवता, पंच महत् तत्त्व, अंडज, गर्भज, सजीव-निर्जीव सभी में है. **चूंकि सभी इसी से आते हैं और इसी पर निर्भर करते हैं, इसीलिए सभी ब्रह्म है. यह कहा जाता है कि जिसे यह ज्ञात होता है कि प्रज्ञा (चेतना, Consciousness) ब्रह्म है (प्रज्ञानं ब्रह्म) वह अमरता को प्राप्त करता है.**

ॐ तत् सत्

परिशिष्ट १. निरहंकार से अमरता की प्राप्ति

सम्पूर्ण कर्मों में अहंकार और आसक्ति का परित्याग कर तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ. शोक मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बन्धनों) से मुक्त कर मोक्ष प्रदान करूंगा. (गीता १८.६६)

अहंकार से हम सरलता से नहीं छूट सकते. अहंकार को लड़कर नहीं जीता जा सकता जिस प्रकार अंधकार से नहीं लड़ा जा सकता. अहंकार हमारे जीवन में कदम-कदम पर व्याप्त रहता है. ज्ञान अर्थात् पराभक्ति ही एकमात्र साधन है जिससे अहंकार की दीवार–जो ईश्वर को जीव से अलग किये रखता है – को तोड़ा जा सकता है. जब यह मानसिक दीवार भंग हो जाती है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि "जीवात्मा ही ब्रह्म है" (अयम् आत्मा ब्रह्म, मा.उ. ०२ अथर्ववेद में), जिस प्रकार घड़ा टूटने पर ही घटाकाश और महाकाश एक हो जाता है. संत ज्ञानेश्वर, ऐसा दृढ़ विश्वास को —कि जगत् में ब्रह्म के सिबा और कुछ भी नहीं है (गीता ७.०७, ७.१९) तथा जीव, जगत् और जगदीश अभिन्न है—ही समर्पण (शरणागति) मानते हैं.

सब धर्मों, अर्थात् कर्तव्य-कर्मों, का परित्याग कर प्रभु की शरण में जाने का अर्थ है कि जिज्ञासु को अपने धर्म का पालन प्रभु को समर्पण के रूप में अहंकार और आसक्ति के बिना करना चाहिए और सहायता तथा मार्गदर्शन के लिए पूर्णतः प्रभु पर निर्भर रहना चाहिए. जो पूर्णतः प्रभु पर निर्भर रहता है, उस व्यक्ति का सम्पूर्ण दायित्व प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं. यदि तम्हें कोई अच्छा समाधान मिल जाता है और तुम उसके प्रति आसक्त हो जाते हो, तो वह समाधान ही तुम्हारी समस्या बन जाएगा. शास्त्रों की उक्ति है—बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने सारे जीवन पुण्य कार्यों में भी आसक्त न होकर अपने मन और बुद्धि को परमात्मा के ध्यान और चिन्तन में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए (म.भा. १२.२९०.२१). व्यक्ति को साधना के फलों सहित सब वस्तुओं को प्रभु को अर्पित करते हुए वास्तविक आत्मसमर्पण की भावना का विकास करना चाहिए. अपने सब कर्मों को हमें दिव्य शक्ति से सन्नद्ध करना चाहिए. विश्व अधिनियमों अर्थात् प्रभु-इच्छा से नियंत्रित है. सम्पत्ति में प्रभु के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए और विपत्ति में प्रभु-इच्छा को स्वीकार कर लेना चाहिए.

पावन और अपावन फलों से, जो व्यक्ति को इस भौतिक दुनिया से बांधते हैं, मुक्त होने के लिए अपना हर कर्म प्रभु को अर्पित करना आवश्यक है. जब कोई भक्त सच्चे मन से प्रभु के लिए कर्म करता है, तब ऐसे भक्त को वे अपनी बाह्य ऊर्जा (माया) के संसर्ग से बचाते हैं. यदि कोई स्वेच्छा से सब स्थितियों में परमप्रभु पर निर्भर करता है, तो उसके कर्मों के फल—पुण्य और पाप—अपने आप ही प्रभु को चले जाते हैं और व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है.

एक सच्चे भक्त का दृष्टिकोण होगा—हे प्रभु, मैंने तुम्हारा स्मरण किया, क्योंकि तुमने मुझे याद किया. जैसे ही किसी व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है और उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि सभी कुछ प्रभु की इच्छा से होता है, यह प्रभु का संसार है, उसी की लीला है, हमारा नहीं, उसी का संग्राम है. जैसे ही व्यक्ति अपनेको प्रभु की लीला में अभिनेता मात्र समझता है तथा प्रभु को सृष्टि के रंगमंच पर आत्मा के ब्रह्माण्ड-नाटक का सूत्रधार समझता है, वैसे ही वह तुरन्त ही बन्धन का हर जुआ तोड़ देता है और इसी जन्म

में जीवनमुक्त हो जाता है. व्यक्तिगत इच्छा को दैवी इच्छा को समर्पण कर देना सब साधनाओं की चरम परिणति है, जिसका परिणाम होता है जीवन के हर्ष और शोक के नाटक में सहर्ष भागी होना. इसीका नाम जीवनमुक्ति है या बौद्ध धर्म में महायान. जब तक व्यक्ति कर्ता होने के भाव या स्वामित्वभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाता, तब तक उसे प्रभु के दर्शन नहीं हो सकते. प्रभु की कृपा तभी उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि वह कर्ता नहीं है और तब वह तत्क्षण इसी जन्म में मुक्त हो जाता है. समर्पित व्यक्ति को उद्भासित होने के लिए प्रभु आत्मबोध के विज्ञान का ज्ञान देता है.

प्रभु को समर्पण करने का अर्थ संसार का त्याग नहीं है, वरन् इस बात को जान लेना है कि हर चीज प्रभु के विधान के अनुसार और उसके निर्देशन और शक्ति से होती है. इस बात का पूर्ण अभास हो जाना ही कि सब कुछ दैवी योजना के अधीन और नियंत्रित है, प्रभु को समर्पण करना है. समर्पण में व्यक्ति अपने श्रेष्ठतम प्रयत्नों का त्याग किए बिना दैवी योजना द्वारा अपने जीवन का संचालन होने देता है. समर्पण व्यक्तिगत अस्मिता अथवा अहम् का पूर्ण त्याग है. समर्पण इस प्रकार का भाव है– हे मेरे प्रिय प्रभु, कुछ भी मेरा नहीं है, सब कुछ–मेरा तन, मन, धन और आत्मा भी–तेरा ही है. मैं ईश्वर नहीं, ईश्वर का सेवक हूं; आवागमन के सागर से मेरी रक्षा करो. मैंने शास्त्रों में दिए सब तरीकों से भौतिक संसार से निकलने का प्रयत्न किया, पर मैं असफल रहा. अब मैंने अन्तिम प्रक्रिया–विनय और समर्पण से दैवी कृपा को खोजना–को खोज लिया है. प्रभु की खोज उसको ढूंढने में उसीकी सहायता की प्रार्थना से की जा सकती है, मात्र साधना से नहीं. इस प्रकार व्यक्ति को अपनी आध्यात्मिक साधना की यात्रा द्वैतवादी के रूप में शुरू करनी चाहिए, अद्वैतवाद का अनुभव करना चाहिए और पुनः द्वैतवाद की ओर लौट आना चाहिए. सफल यात्रा की समाप्ति आरम्भ स्थान पर ही होती है.

समर्पण की प्रक्रिया को योग का पांचवा अथवा अंतिम (चरम परिणति का) मार्ग कहा जा सकता है, दूसरे चार मार्ग हैं– सेवा, ब्रह्मज्ञान, भक्ति और ध्यान. दयालु प्रभु प्राणियों के मन और इन्द्रियों को उनकी कर्मप्रसूत इच्छाओं के अनुसार निर्देशित करता है. किन्तु समर्पित भक्त के श्रेष्ठ हित के लिए प्रभु अपनी इच्छा से भक्त की इन्द्रियों को नियंत्रित करता है. स्वामी चिदानन्द सरस्वती (मुनिजी) ने इस प्रक्रिया का विश्लेषण सुन्दर ढंग से किया है. वे कहते हैं: हर वेदना, हर दर्द, हर असुविधा प्रभु का वरदान और कृपा बन जाती है, जब हम उसे प्रभु के हाथ में सौप देते हैं. यदि तुम अपने जीवन की बागडोर प्रभु के हाथों में सौप दोगे, तो तुम सदा के लिए सुखी और शान्त हो जाओगे. यह है चरम समर्पण का पाठ, जो मुनिजी देते हैं. साधना के बिना समर्पण तथा समर्पण के बिना साधना अधूरी रहती है.

यह दैवी कृपा या शक्ति ही है, जो आत्मप्रयास के रूप में आती है. प्रसाद और प्रयास तथा द्वैतवाद और अद्वैतवाद परमसत्य के सिक्के के दो पहलू हैं और कुछ नहीं. प्रभु-कृपा हमेशा उपलब्ध है, व्यक्ति को उसे लेने की जरूरत है. कृपा का वरदान पाना सुगम नहीं है. व्यक्ति को इसे सच्ची साधना और प्रयास से अर्जित करना पड़ता है. प्रभु-कृपा हमारे श्रेष्ठ कर्मों का क्रीम है, श्रेष्ठतम अंश है. कहा गया है कि आत्मप्रयास नितान्त अनिवार्य है, किन्तु परमात्मा को पाने के सोपान का अन्तिम डण्डा आत्मप्रयास नहीं, बल्कि समर्पण की भावना से प्रभुकृपा के लिए प्रार्थना करना है. साधना के विना समर्पण तथा समर्पण के विना साधना अधूरी रहती है. जब सब कुछ प्रभु को अर्पण कर दिया जाता है

और जब व्यक्ति सचमुच यह समझ जाता है कि प्रभु ही गन्तव्य, पथ और पथिक तथा पथ की बाधाएं भी है; तब गुण, अवगुण, पुण्य, पाप आदि शक्तिहीन और हानिशून्य हो जाते हैं, जैसे कि विषदन्त-विहीन नाग.

श्री शंकराचार्य के अनुसार यदि परब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ विद्यमान दिखाई देता है, तो वह मृगमरीचिका की भांति अवास्तविक है, जैसे कि रज्जु में सर्प का आभास. जब कोई पूर्णतः यह समझ जाता है कि संसार में परमात्मा और उसकी लीला (माया) को छोड़कर कुछ भी नहीं है, तब उसके सब कर्म समाप्त हो जाते हैं, व्यक्ति प्रभु की इच्छा के सामने समर्पण कर देता है और मुक्ति पा लेता है. श्री युक्तेश्वर जी का कहना है– मानव-जीवन शोक से ग्रस्त रहता है, जब तक हम प्रभु की इच्छा के सामने समर्पण करना नहीं सीख जाते, या ईश्वरीय इच्छा, जो हमारी बुद्धि को चकरा देती है, के साथ एकात्म नहीं हो जाते. ब्रह्मज्ञानी शोक से ऊपर उठ जाता है.

नोट १७: भारत के ऋषिगण या आधुनिक वैज्ञानिक कभी भी एकमत से किसी ब्रह्माण्ड निर्माण सिद्धांत के प्रतिपादन में सक्षम नहीं हुए हैं. मानव मस्तिष्क से असीम सत्ता का बोध अनजान ही रहेगा. विभिन्न वेदों एवं उपनिषदों के ज्ञानियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के लगभग बीस निर्माण सिद्धांत प्राप्त हैं. उनमें से कुछ इस पुस्तक (प्र.उ. 1.1.04, मु.उ. 1.1.07-08, ऐ.उ. 1.1.01, तथा श्वे.उ. 4.01) में दिये गये हैं.

अब हम यहां एक और सृष्टि-निर्माण सिद्धांत का उल्लेख कर रहे हैं :--

परिशिष्ट २. परमपिता परमात्मा का अवरोहण

नोट– निम्न व्याख्या केवल उन प्रबुद्ध पाठकों के लिए है जिन्होंने गीता के अध्ययन में कुछ वर्ष लगाए हैं. पाठकगण निम्नलिखित वैश्विक व्यवस्था को श्रेणी-क्रम (Hierarchy of Cosmic Control) से अंकित करते हुए रेखाचित्र को देखने के लिए कृपया website: www.gita-society.com/genesis पर जाएं. कोष्ठक के अन्दरवाले अंकों को website के रेखाचित्र या आगे पृष्ठ 79 पर देखें.

वैदिक सृष्टि-शास्त्र में आकाश (Cosmic Space) पांच प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित है– (१) चिदाकाश, (२) सदाकाश, (३) परमाकाश, (४) ब्रह्माण्डाकाश, और (५) महाकाश.

(१) चिदाकाश

परब्रह्म परमात्मा (1) का निवास, परमधाम (गीता १५.०६); सर्वोपरि स्थान, चिदाकाश में स्थित है. यहां श्रीकृष्ण परमात्मा, परमप्रभु, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, सच्चिदानन्द, पिता, परमेश्वर आदि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं.

(२) सदाकाश

अक्षरब्रह्म (2) सदाकाश में परब्रह्म परमात्मा की सत् प्रकृति का विस्तार है, जैसा कि गीता १०.४२ और १४.२७ में बताया गया है. गीता के श्लोक ८.०३ और १५.१६ में उल्लिखित अक्षरब्रह्म के तीन प्रमुख विस्तार (या पाद) ये हैं– सत् (2a), सबलब्रह्म या चित् (2b), और आनन्द (2c) अथवा केवलब्रह्म. सत् स्वभाव को आत्मा या परमेश्वर भी कहा गया है. चित् स्वभाव के और भी विभिन्न नाम हैं, जैसे–चैतन्यब्रह्म, परमशिव और परात्मा.

केवलब्रह्म की ऊर्जा, आनन्द, को गीता के श्लोक ४.०६ और ७.२५ में योगमाया भी कहा गया है.

(३) परमाकाश

चित् (2b) और आनन्द (2c) प्रकृतियां परमाकाश में चतुर्थपाद, अव्यक्त अक्षरब्रह्म या अव्यक्तब्रह्म (3) के अवरोहण हेतु संयुज्य होती हैं. इसे कई नामों से जाना जाता है– जैसे अनिर्वचनीय ब्रह्म, अव्यक्त, आदिपुरुष, आदिप्रकृति, प्रधान, विग्रह और सर्वकारण-कारणम्. अव्यक्तब्रह्म, जो परब्रह्म (परमात्मा) का लघु अंश मात्र है, अनन्त ब्रह्माण्ड में विस्तार पाता है, जैसा कि गीता ८.१८ और १०.४१ में कहा गया है. परमाकाश योगमाया की प्रमुख शक्तियों–आवरण शक्ति, विक्षेप शक्ति, विग्रह शक्ति, ब्रह्मविद्या शक्ति, प्रज्ञा, कर्म तथा ऊर्जा को पदार्थ और पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तन करने की शक्ति आदि–का भी आवास है.

भगवान् कृष्ण परमाकाश में गोलोकीनाथ के रूप में जाने जाते हैं. गोलोकीनाथ अर्थात् अव्यक्तब्रह्म के दो प्रमुख विस्तरण हैं– ब्रह्मशिव या प्रणव-ब्रह्म (3a) और मायाब्रह्म (3b). प्रणवब्रह्म नादशिव या ओंकार (3a.1) में विस्तार पाते हैं, और ओंकार शिव या ओम् (3a.1a) में (गीता १०.२५). प्रणवब्रह्म का अवरोहण गायत्री (3a.2) (गीता १०.३५) में भी होता है, जो वेदों का आवास है (गीता ७.०८).

मायाब्रह्म परमाकाश में योगमाया का प्रतिबिम्ब है. यह अन्य क्रमिक परिवर्तित रूपों–जैसे महामाया, कालमाया और माया (3b.1) (गीता ७.१४)– में भी अवतरित होता है.

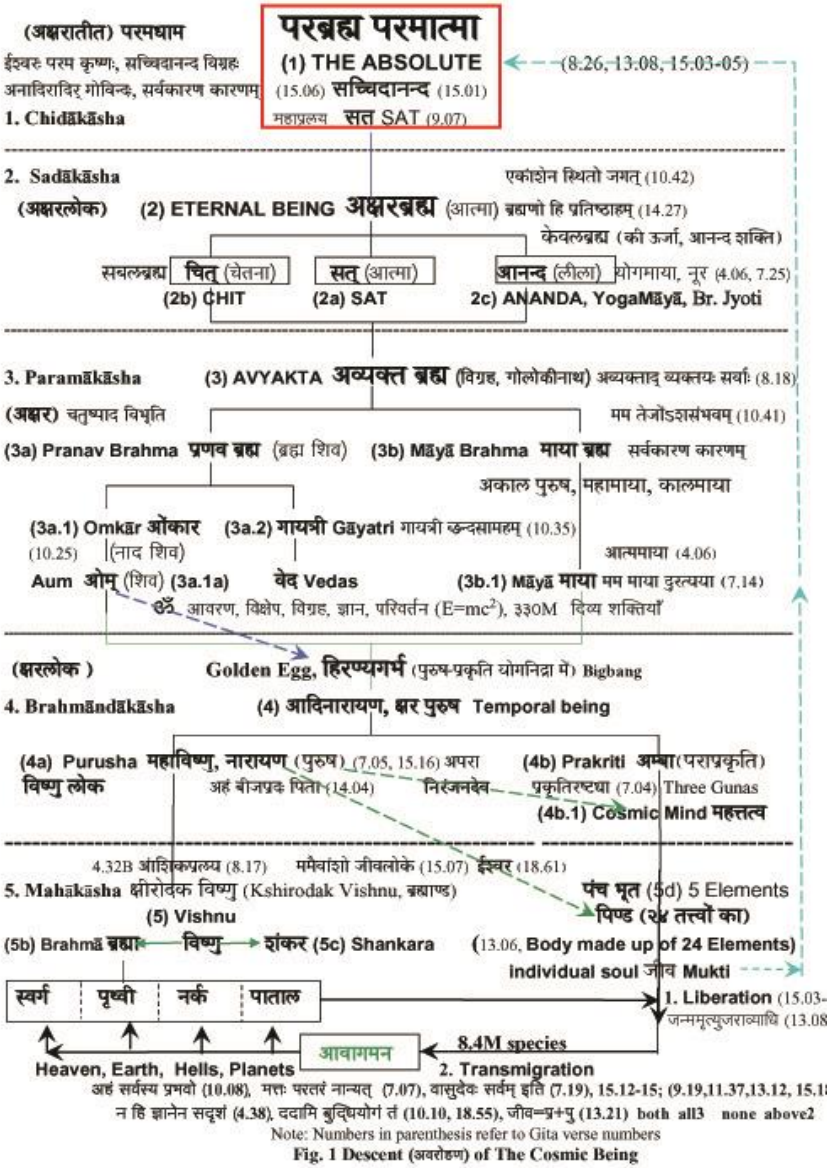

Fig. 1 Descent (अवरोहण) of The Cosmic Being

(४) ब्रह्माण्डाकाश

माया अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा शक्ति के अल्पांश से ब्रह्माण्डाकाश का निर्माण करती है. ब्रह्माण्डाकाश में माया देवी हिरण्यगर्भ (Golden Egg) का भी निर्माण करती है. आदिनारायण (अथवा आदि पुरुष (4), क्षर पुरुष, शम्भू , महादेव) और महादेवी (अथवा आदि प्रकृति, मां, अम्बा) हिरण्यगर्भ में एक कल्प या 311 Trillion solar years तक योगनिद्रा में रहते हैं (गीता ९.०७). ओम् का ब्रह्मनाद हिरण्यगर्भ को सक्रिय अर्थात् जाग्रत् (Big bang) कर महाविष्णु—जो पुरुष (4a) या नारायण, (गीता ७.०५, १५.१६) नाम से भी जाने जाते हैं—और अम्बा या प्रकृति (4b) (गीता ७.०४) का उद्भव करता है. प्रकृति के तीन गुण हैं. (अध्याय १४ भी देखें.) प्रकृति के इन तीन गुणों का समुच्चय महत्तत्व, तन्नमात्रा अथवा महत् (4b.1) भी कहलाता है. महाविष्णु अपनी श्वांस-शक्ति से घटाकाश में अनन्त ब्रह्माण्ड (Cosmic Eggs) की उत्पत्ति करते हैं.

(५) महाकाश

महाकाश (अथवा विष्णुलोक) में ब्रह्माण्डाकाश के नारायण या महाविष्णु विष्णु (5) के रूप में प्रकट होते हैं, जहां उनको क्षीरोदक-विष्णु भी कहा जाता है और वे अपनी भूमिका का विस्तार ब्रह्मा (5b) और शंकर (5c) के रूप में करते हैं. ब्रह्मा सात स्वर्गों, सात पातालों, जम्बूद्वीपों, धरा और अन्य नारकीय नक्षत्रों का सृजन करते हैं. आंशिक-प्रलय-काल (गीता ८.१७) में ब्रह्मा की समस्त सृष्टि क्षीरोदक विष्णु के उदर में समाहित रहती है. नारायण अपना विस्तार निरंजन देव और ईश्वर के रूप में भी करते हैं. निरंजनदेव महत्तत्व को सक्रिय कर पंचभूतों (5d)—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—का निर्माण करते हैं. (गीता ७.०४ भी देखें.)

पंचभूत विस्तृत होकर २४ तत्त्वों (गीता १३.०६ में व्याख्या देखें.) के बने हुए पिण्ड में परिवर्तित हो जाते हैं. पिण्ड से जीवों के पार्थिव शरीरों की रचना पृथ्वी पर की जाती है, जब नारायण अपनी जीवन-शक्ति का बीज (श्लोक ७.१०, १०.३९ और १४.०४ भी देखें) पिण्ड में प्रस्थापित करते हैं और ईश्वर के रूप में समस्त जीवों के अन्तःकरण में निवास करते हैं. (१५.०७ और १८.६१ भी देखें.) जीव जब तक माया द्वारा निर्मित अज्ञान के पर्दे के कारण शारीरिक धारणा में रहता है तब तक पृथ्वी पर चौरासी लाख योनियों मे आवागमन करता रहता है. जीव उस समय मोक्ष प्राप्त करता है जब उसे अपने अच्छे कर्मों से किसी सद्गुरु या गीता द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है और यह अनुभव कर लेता है कि वह पार्थिव शरीर या कर्ता नहीं है, वरन् परमात्मा का दैवी माध्यम और अभिन्न अंग, आत्मा है.

ब्रह्माण्डाकाश और महाकाश में हर वस्तु क्षर कहलाती है. सदाकाश और परमाकाश में हर वस्तु अक्षर (अविनाशी, शाश्वत) कहलाती है. परमात्मा को क्षर और अक्षर दोनों से परे, गीता के श्लोक १५.१८ में, अक्षरातीत कहा गया है.

९. श्वेताश्वतरोपनिषद्

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कुल छः अध्याय हैं जिनमें ११३ मंत्र हैं. यह शुक्ल यजुर्वेद से संबद्ध है और इसका नाम ऋषि श्वेताश्वतर के उपर रखा गया है. इसका मुख्य लक्ष्य अद्वैत वेदान्त की स्थापना है. फिर भी इसमें निहित आराधना के स्वर अत्यंत स्पष्ट हैं. इसके पाठ में ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय स्पष्ट रूप से व्याप्त है.

अध्याय १

मुख्य कारण

१. वेद के विद्यार्थीगण आपस में इन प्रश्नों के उपर चर्चा कर रहे हैं—इस सृष्टि का कारण क्या ब्रह्म है? हमलोग किससे उत्पन्न हुए हैं? हम क्यों जीवीत रहते हैं? और अंत में हमारी स्थिति किसमें है? किनके आदेश पर हम सुख-दुःख का अनुभव करते हैं?

२. क्या काल, या प्रकृति, या नियति, या आकस्मिक घटना, या पंच तत्त्व, या इनके संयोग को जगत् का कारण माना जा सकता है? या उसे जिसे हम पुरुष या जीवात्मा कहते हैं?

३. ऋषियों ने ध्यान-योग की साधना में लीन होकर अपने गुणों से ढकी हुई उस परमात्मदेव की स्वरूपभूत अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार किया. वही अद्वैत ईश्वर इन सभी कारणों—काल, आत्मा, एवं अन्य—के उपर शासन करता है.

दैविक चक्र

४. ऋषियों ने—एक धुरेवाला, तीन घेरोंवाले, सोलह सिरोंवाले पचास अरोंवाले, बीस विपरीत अरोंवाले, छः अष्टकों, अनेक रूपोंवाले, एक ही पाश से युक्त, मार्ग के तीन भेदोंवाले तथा दो निमित्त एवं मोहरूपी एक नाभिवाले एक दैविक चक्र—को देखा.

उपर्युक्त मंत्र अत्यंत तकनीकी कल्पना है. इसकी व्याख्या एवं इसे समझना अत्यंत कठिन है. इसके गतिशील प्रकृति को दर्शाने के लिए—जो कि अनवरत गतिमान है, इस जगत् की तुलना एक दिव्य चक्र से की गई है. निम्नांकित मंत्र में जगत् की तुलना एक नदी से की गई है.

५. हम उसके विषय में एक नदी के रूप में सोचते हैं जिसकी पांच तरंगे, पांच इन्द्रियों के समान हैं, जिन्हें पांच तत्त्वों को जोड़कर बनाया जाता है. उसकी लहरें पांच प्राण की तरह हैं. जिसका मुख्य सर मन है, जो पांच प्रकार के अवधारणाओं का स्रोत है. इस नदी में पांच प्रकार के भंवर हैं और पांच प्रकार के दुःखरूपी प्रवाह के वेग हैं. अनेक भेदोंवाली इसमें पांच प्रकार के क्लेश हैं.

६. इस विस्तृत ब्रह्मचक्र में जो सभी का आश्रय है, जिसका सभी जीव पालन करते हैं, हंस रूपी जीवात्मा इतने समय तक घूमता रहता है कि वह सोचने लगता है कि वह नियंता से अलग है. पश्चात् उस प्रेरक परमात्मा से स्वीकृति पाप्त कर (जब वह आत्मप्रयास के हद तक पहुंच जाता है) जीवात्मा अमर हो जाता है.

७. उपनिषदों में लिखित व्यवहार से केवल परम ब्रह्म ही अछूता रहता है. उसमें तीनों लोक स्थित है—जो भोक्ता (कर्ता), भोग के साधन, और ईश्वर, जो सर्वनियन्ता है, की त्रिमूर्ति है. यह ब्रह्म अनश्वर रूप में स्थापित है, यह अक्षत है. ऋषिगण ब्रह्म को सभी घटनाओं का मूल तत्त्व जानकर उनके प्रति समर्पित हो जाते हैं. संपूर्ण रूप से ब्रह्म में स्थित वे पुनर्जन्म के चक्र से स्वतंत्र हो जाते हैं.

जीव, जगत् एवं जगदीश

८. परमेश्वर इस ब्रह्माण्ड—क्षर एवं अक्षर, व्यक्त (कार्य) एवं अव्यक्त (कारण) सभी—के पालनकर्ता हैं. **वही परमेश्वर भोक्ता के रूप में विषयों के बंधन में पड़ जाता है. जीव को जब परमात्मा का पुनः ज्ञान होता है तब वह सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है.**

९. परमेश्वर सर्वशक्तिमान् एवं सर्वज्ञानी है, जबकि जीव अल्प-ज्ञानी एवं अल्प शक्तिवाला होता है. लेकिन इस विलक्षण जगत् में अनादि प्रकृति (माया) है जो कि भोक्ता, भोग एवं भोग की वस्तुओं की कल्पना को उजागर करता है. आत्मा अनंत है, सर्वव्याप्त है और माध्यमविहीन है. **जब जिज्ञासु इन तीनों (जीव, जगत् , जगदीश) को ब्रह्म के रूप में जान लेता है तो वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है.**

१०. प्रकृति नश्वर है लेकिन ईश्वर अमर एवं अनश्वर है. अद्वैत परमात्मा प्रकृति एवं जीवात्मा दोनों पर शासन करता है. उसकी अनवरत साधना, मन को उसमें लगाये रहने से तथा तन्मय हो जाने से अन्त में (जीव) उसी को प्राप्त हो जाता है जिससे सारे भ्रम समाप्त हो जाते हैं.

११. भगवद् ज्ञान के पश्चात् सारे बंधन समाप्त हो जाते हैं, सारे दुःख समाप्त हो जाते हैं, मृत्यु एवं जन्म का अंत हो जाता है. उनकी साधना से, शरीर के नष्ट होने के पहले तुरीय अवस्था जो सार्वभौम सत्ता का सूचक है, उत्पन्न होती है. अंत में साधक उस अवस्था को भी पारकर ब्रह्मानन्द में पूरी तरह डूब जाता है.

१२. **ब्रह्मज्ञानियों के अनुसार—भोक्ता (जीव), भोग-वस्तु (जगत्), एवं स्वामी (ईश्वर, जगदीश)—ये सब ब्रह्म के सिवा कुछ भी नहीं है. यही ब्रह्म, जो जीव का सतत् पालन करता है, ज्ञान का विषय है. इसके अलावा वस्तुतः कुछ भी जानने के योग्य नहीं है.**

१३. दृश्य अग्नि जब तक अपने स्रोत (अरणि) में अप्रकट रहता है, तब तक देखा नहीं जाता है. लेकिन तब भी अग्नि के उस सूक्ष्म रूप का नाश नहीं होता. उस अग्नि को अरणि (उसके स्रोत) में सतत चेष्टा से प्रकट किया जा सकता है. उसी प्रकार से आत्मा, जो तीनों अवस्थाओं में उपस्थित है, उसे ओंकार के सतत् जाप से जाना जा सकता है.

१४. अपने शरीर को नीचे की अरणि एवं ओंकार को उपर की अरणि मानकर, ध्यान के सतत् मन्थन से कोई भी उपासक, काष्ठ में अप्रकट अग्नि की भांति प्रकाशमान आत्मा को जान सकता है.

१५-१६. जिस प्रकार तिल के बीज में तेल, दूध में मक्खन, भूमिगत नदी में जल, अरणि में अग्नि होता है उसी प्रकार परमात्मा हमारे हृदय रूपी गुफा में होते हैं जिन्हें आत्म-ज्ञान के द्वारा प्राप्त किया जाता है. कोई साधक इसे सदाचार, सत्यभाषण एवं संयम द्वारा परब्रह्म का---जो समस्त वस्तुओं में दूध में मक्खन की तरह व्याप्त है---ध्यान करते हुए इसे प्राप्त कर सकता है. उपनिषदों द्वारा सिखाया गया यही ब्रह्म है.

अध्याय २

१. सत्य प्राप्ति के लिए मन और इन्द्रियों के उपर नियंत्रण आवश्यक है. उसके उपरांत ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर जीवात्मा समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है.

२. जब मन हमारे नियंत्रण में होता है तब हम दैवी शक्ति के नियंत्रण में होते हैं. वह परमात्मा को प्राप्त करने की हमें शक्ति प्रदान करता है.

३. सूर्य भगवान् हमारी इन्द्रियों एवं मन को आत्मा से जोड़कर कृपादृष्टि बनाये रखें जिससे इन्द्रियों को आनंदमय ब्रह्म की ओर निर्देशित किया जा सके और ज्ञान द्वारा शक्तिशाली एवं दिव्य ब्रह्म को उजागर कर सके.

४. कुछ ही दृढ़ निश्चयी लोग आंतरिक आत्मा---जो सार्वभौम, सर्वज्ञाता, अनंत एवं स्वयं प्रकाशित है---की महिमा के दर्शन के लिए आवश्यक अनुशासन एवं आध्यात्मिक प्रक्रियाओं से गुजरते हैं.

५. हे मनोदेव, मैं हम दोनों के स्वामी और समस्त जगत के आदिकारण परब्रह्म परमात्मा को बार-बार नमस्कार करके विनयपूर्वक उनकी शरण में जाता हूं. मुझे सभी दिशाओं में प्रकाश को ले जानवाले उस परमात्मा की कीर्ति गाने दो. अंतरिक्ष में स्थित देवपुत्र, एवं अन्य जो भी हैं, वे मेरी इस प्रार्थना को स्वीकर करें.

६. बिना सूर्य की शांति के किये हुए यज्ञाग्नि से मन बंध जाता है और वायुदेव को समर्पित अर्घ्य के उपरांत लोग प्रचुर मात्रा में सोम रस पीते हैं.

७. उस शाश्वत ब्रह्म की सेवा सूर्य, जो इस जगत् का कारण है, के आशीर्वाद से करो. शाश्वत ब्रह्म के चिंतन में हमेशा रत रहो. इससे तुम्हारे कर्म विघ्नकारक नहीं होंगे.

योग प्रक्रिया

८. एक प्रबुद्ध पुरुष को अपना सिर गला और छाती—ये तीनों अंग उंचा उठा कर—शरीर को सीधा और स्थिर करके, समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में निरुद्ध करके ब्रह्मरूपी नौका के सहारे इस जगत् के भयानक प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए.

९. नियमित अभ्यास वाले योगियों को प्राण नियंत्रित करने की कोशिश करनी चाहिए. श्वसन प्रक्रिया के शांत हो जाने के बाद उन्हें अपनी नासिकाओं से स्वास को उच्छवासित करना चाहिए. पश्चात् उसे अपने मन को नियंत्रित करना चाहिए, जैसे कोई सारथी अपने दुष्ट अश्वों को नियंत्रित करता है.

१०. मन एवं नेत्रों को प्रसन्न रखते हुए योग को वैसे स्थान पर करना चाहिए जहां वायु के तीव्र झोंके से वह सुरक्षित रह सके. जो स्थान समतल, कंकड़-पत्थरों, अग्नि एवं बालू से रहित, जल या बाजार के कोलाहल से विघ्नरहित हो.

११. परमात्मा की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योग में पहले हिमकण, धूम्र, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनु, बिजली, स्फटिक और चंद्र के सदृश अनेकों दृश्य योगी के सामने प्रकट होते हैं.

१२. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—इन पांच महाभूतों के उदय होने पर तथा इनसे संबंधित पांच प्रकार के योग गुणों की सिद्धि हो जाने पर योगी का शरीर योगाग्नि से शुद्ध होकर, व्याधि, जरा एवं मृत्यु से मुक्त हो जाता है. (इस श्लोक का तात्पर्य योग जनित सिद्धियों से है.)

१३. शरीर की भारहीनता, रोगाभाव, विषय में अनासक्ति, शारीरिक वर्ण की उज्जवलता, स्वर की मधुरता, सुवासित गंध एवं अल्प उत्सर्जन—ये सब योगमार्ग की प्रारंभिक सिद्धियां हैं.

१४. जिस प्रकार मिट्टी से मलिन स्वर्ण धुल जाने के पश्चात् ज्यादा चमकता है, उसी प्रकार एक योगी भी आत्मा के सत्य को जानकर, अद्वैत आत्मा के साथ एकाकार होकर, लक्ष्य को प्राप्त कर, समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है.

१५. जब योगी दीपक के सदृश आत्मतत्त्व के द्वारा, ब्रह्मतत्त्व को प्रत्यक्ष कर लेता है तो उस समय वह अजन्मा एवं अक्षर परमदेव परमात्मा को जानकर समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है.

ईश्वर की महिमा का वर्णन

१६. निश्चय ही परमदेव परमात्मा सभी दिशाओं में संपूर्ण रूप से प्रभासित है. वह प्रथम जन्मा (ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ) है. वह समस्त ब्रह्माण्डरूप गर्भ में अंतर्यामीरूप से स्थित है. वही इस समय जगत के रूप में प्रकट है और वही भविष्य में भी प्रकट होनेवाला है. वह सभी जीवों में उसकी आत्मा के रूप में समाहित है और सर्वत्र विद्यमान है.

१७. उस परमेश्वर को बार-बार नमस्कार है जो अग्नि में है, जो जल में है, जो वनस्पतियों में है, जो औषधियों में है और जो समस्त लोको में है.

अध्याय ३

१. सृष्टि एवं विनाश के समय केवल अद्वैत आत्मा का ही अस्तित्व होता है. उस समय उसकी शक्ति कई गुणा होती है और माया की असीम शक्ति के कारण वह दिव्य परमेश्वर के समान होता है. वही संपूर्ण विश्व की रक्षा करता है और अपने अंतर्गत कार्य कर रही अनेक शक्तियों को नियंत्रित करता है. जिसे इनके अस्तित्व का ज्ञान होता है वह अमर हो जाता है.

रुद्र (शिव) ईश्वर हैं

२. ब्रह्मज्ञानियों के लिए रुद्र या परमात्मा ही सर्वस्व है, उनके लिए दूसरा कुछ भी नहीं है. वही समस्त संसार पर अपनी शक्तियों से शासन करता है. वह अंतरात्मा के रूप में सभी जीवों के अंदर वास करता है. समस्त लोकों के निर्माण के पश्चात् उनकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर प्रलयकाल में सर्वस्व अपने अंदर समाहित कर लेता है.

३. उनके नेत्र, मुख, भुजाएं एवं पैर सर्वत्र विद्यमान हैं. स्वर्ग एवं नर्क की सृष्टि करनेवाला वह अद्वैत परमात्मा मनुष्य आदि जीवों को दो-दो भुजाएं एवं पैर देता है, पक्षियों एवं पतंगों को पैर एवं पंख प्रदान करता है.

४. वह सर्वदर्शी रुद्र है, देवताओं का जनक है और उनका शक्तिदाता है, विश्व का आश्रयदाता है. पूर्व में जिसने हिरण्यगर्भ को जन्म दिया वह परमेश्वर हमें बुद्धि प्रदान करे.

५. हे रुद्र! तेरी सौम्य, प्रकाशित होनेवाली, कल्याणमयी मूर्ति है. पर्वत पर रहकर सुख का विस्तार करनेवाले शिव जैसे परम शान्त मूर्ति से हमलोगों को देखो.

६. हे सुखदायक परमेश्वर! जिस बाण को आपने हाथ में धारण कर रखा है उसे हितकारी बनाओ. हे शरीर के रक्षक! किसी व्यक्ति या जगत् को कष्ट न दो.

ब्रह्म के व्यक्तिगत एवं अव्यक्तिगत भाव

७. परमेश्वर ब्रह्मा से तथा ब्रह्म से भी उपर है. वह विशाल है और सभी जीवों के शरीर में छुपा है. **उस महान सर्वव्यापक परमेश्वर को जानकर साधक अमर हो जाता है.**

८. मैं परम पुरुष को जानता हूं जो सूर्य की तरह प्रकाशमान है और अंधकार के परे है. उसके ज्ञान के पश्चात् ही कोई मृत्यु को पार कर सकता है. उस परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई अन्य मार्ग नहीं है.

९. संपूर्ण ब्रह्माण्ड उस पुरुष से व्याप्त है, उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, उससे कुछ भी अलग नहीं है, उससे न तो कुछ वृहतर है और न ही लघुतर है. वह अकेला एक वृक्ष की भांति निश्चलभाव से इस प्रभासित परमधाम में स्थित रहता है.

१०. वह परब्रह्म परमात्मा इस जगत् से परे, आकाररहित एवं सब प्रकार के दुःखों से रहित है. जो इसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं, जबकि अन्य कष्ट में होते हैं.

११. सभी मुख उनके मुख हैं, सभी सिर उनके सिर हैं, सभी गर्दन उनके गर्दन हैं. वह समस्त जीवों के हृदयरूप गुहा में वास करता है. वह सर्वव्यापी भगवान् है. इसीलिए वह सर्वज्ञ एवं दयावान् ईश्वर कहलाता है.

१२. वह निश्चित ही महान पुरुष है, जो सबका शासक है. वह अविनाशी, ज्योतिरूप पुरुषोत्तम अपनी प्राप्ति तथा शुचिता के लिए अंतःकरण को प्रेरित करता है.

१३. वह अंगुष्ठमात्र पुरुष सभी जीवों के हृदय में स्थित अंतरात्मा है. वह मन का स्वामी है तथा निर्मल हृदय एवं विशुद्ध मन से हृदय के अन्दर अनुभव किया जाता है. जो उसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं.

परमात्मा को केवल दृष्टांत से समझा जा सकता है

१४. उस अपरिमित पुरुष के सहस्र सिर हैं, सहस्र नेत्र हैं, सहस्र पैर हैं, जिसमें संपूर्ण विश्व समाहित है. फिर भी वह सबके निकट रहता है.

१५. वह दिव्य पुरुष ही सर्वस्व है– हमेशा है और हमेशा रहेगा. वह अमर और इस विश्व का स्वामी है.

१६. उसके हाथ और पैर सर्वत्र हैं. उसके नेत्र, सिर एवं मुख सर्वत्र हैं. उसके कर्ण सर्वत्र हैं. वह इस लोक में सबसे परे है.

परमात्मा के सर्वत्र हाथ, पैर, आंखें, सिर, मुख एवं कर्ण हैं क्योंकि वह सर्वत्र एवं सर्वव्याप्त है. भ.गी. १३.१३-१४

१७. वह स्वयं इन्द्रियों से रहित होकर भी, सभी इन्द्रियों के कार्य करता है. वह सभी का स्वामी एवं सबका शासक है. वह सभी का आश्रय है और सभी का मित्र है.

१८. जो वह संपूर्ण ब्रह्माण्ड–चेतन एवं अचेतन–दोनों का स्वामी है वह दीप्तमान् परमेश्वर नौ द्वारवाले शरीररूपी नगर में वास करता है. वह अन्तर्यामी हृदय में स्थित देही है और बाह्य विश्व में भी लीला करता है.

शास्त्रों में मानव शरीर को नौ द्वारों (या छिद्रों) का नगर कहा गया है. वे नौ छिद्र हैं - दो दो छिद्र नेत्रों, कर्णों एवं नासिका के, एक एक छिद्र मुख, उपस्थ एवं शिश्न के. समस्त जीवों एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी, इस शरीर रूपी नगर में जीवात्मा के साथ सभी कार्यो को करते हुए वास करता है (भ.गी. ५.१३). वह परमेश्वर भौतिक प्रकृति से अनासक्त रहकर, इस खगोलीय नाटक में एक दर्शक के रूप में स्वतंत्र रहता है.

१९. वह परमात्मा हाथों और पैरों से रहित होकर भी तीव्र गति से भागता है और वस्तुओं को ग्रहण करता है, नेत्रों से रहित होकर भी वह देखता है, कर्णों से रहित होकर भी वह सुनता है. जो भी ज्ञात करने योग्य है वह जानता है तथापि उसे कोई नहीं जानता. इसीलिए उसे महान आदि पुरुष कहते हैं.

वह परमात्मा पैरों से रहित होकर भी चलता है, कर्णों से रहित होकर भी सुनता है, हाथों से रहित होकर भी कई कार्य करता है, नाक से रहित होकर भी सुनता है, आंखों से रहित होकर भी देखता है, मुख से रहित होकर भी बोलता है, जिह्वा से रहित होकर भी स्वाद लेता है. उसके सभी कार्य इतने महान हैं कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता है.

२०. सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, महान से भी महानतम आत्मा सभी जीवों के हृदय में स्थित है. उस सृष्टिकर्ता की कृपा से कोई-कोई जीव सभी सुखों और दुखों से स्वतंत्र हो जाता है और उसकी महिमा को देख पाता है.

२१. ब्रह्मज्ञानी जिसे अजन्मा, नित्य, व्यापक, सर्वत्र विद्यमान एवं सभी जीवों की आत्मा के रूप में जानते हैं; उस जरा, मृत्यु आदि विकारों से रहित पुराणपुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूं.

अध्याय ४

१. वह दैवी शक्ति जो रंग, रूपादि से रहित होकर भी अज्ञात प्रयोजन के लिए विविध शक्तियों के संबंध से सृष्टि के आदि में, अनेक रूप-रंग धारण कर लेता है तथा अंत में संपूर्ण विश्व को अपने अंदर समाहित कर लेता है–वह परमदेव हमें अच्छे विचारों से संपन्न करे.

२.वह स्वयं में ही अग्नि है, सूर्य है, वायु है, चंद्र है, तारांकित आकाश है, जल है, अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र है, वही प्रजापति है, वही ब्रह्मा है.

३. आप ही नारी हो, आप पुरुष हो, आप युवा हो, और आप युवती भी हो. आप दंड के सहारे डगमगाते हुए चलनेवाले एक वृद्ध हो, तथा आप ही जन्मोपरांत विभिन्न रूपों को धारण करने में सक्षम हो.

४. आप गहरे नीले रंग के पतंग हो, हरे रंग का लाल आंखोंवाले तोते हो, आप गर्जन करनेवाले बादल हो, वसन्तादि समस्त ऋतु एवं सर्व महासागर हो. आप अनादि तथा सर्वव्याप्त हो. आप ही से संपूर्ण विश्व का जन्म हुआ है.

५. एक ही त्रिगुणमयी रक्त, श्वेत एवं काले रंग की अजन्मा नारी (प्रकृति) है, जो अनगिनत जीवों को जन्म देती है. अज्ञानी जीवात्मा उससे आसक्त होकर उसे भोगते हैं, जबकि ज्ञानी उस भोगय प्रकृति की व्यर्थता को जानकर उनका त्याग कर देते हैं.

दो पक्षियों का दृष्टांत

६. परस्पर मित्रभाव पूर्वक सदैव साथ रहने वाले दो सुंदर पंखों वाले पक्षी (जीवात्मा एवं परमात्मा), एक ही शरीर-रूपी वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं. उनमें से एक वृक्ष का कर्मफल स्वाद लेकर खाता है, जबकि दूसरा (ईश्वर) उसका उपभोग न करते हुए मूक दर्शक की तरह केवल देखता रहता है. (मु.उ. ३.१.०१ भी देखें)

७. एक ही जीवन वृक्ष के उपर बैठे हुए जीवात्मा गहरी आसक्ति में निमग्न असमर्थतावश (**क्योंकि वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है**) मोहित होकर शोक करता रहता है. जब वह अपने से भिन्न समस्त भक्तों द्वारा पूजित, सर्वेश्वर एवं उसकी महिमा को प्रत्यक्ष कर लेता है तो वह सर्वथा शोकरहित हो जाता है.

८. जिसमें समस्त देवगण स्थित हैं, उस अविनाशी, परमधाम में संपूर्ण वेदों का निवास है, जो उसको नहीं जानता उसके लिए वेदों का क्या महत्त्व है? परंतु जो ये सब जानते हैं वही परमानंद प्राप्त कर सकते हैं.

९. माया के स्वामी---वेदों, यज्ञों, आध्यात्मिक प्रक्रियाओं, भूत एवं भविष्य, धार्मिक कृत्यों, और वे सभी जो वेद कहते हैं, उसे आगे बढ़ाता है. इस विश्व में ब्रह्म, जीव के रूप में माया से बंध जाता है (और इससे निकलने की कोशिश करता है).

१०. इसीलिए उस प्रकृति को माया के रूप में जानो और परमेश्वर माया के स्वामी हैं. यह संपूर्ण विश्व वस्तुओं से भरा है जो उनके अस्तित्व का अंग है.

परमात्मा की ओर

११. जो अकेला ही प्रकृति की सभी अवस्थाओं को देखता है, जो सभी अनुग्रहों का दाता है, जिसमें प्रलयकाल में संपूर्ण विश्व विघटित हो जाता है, और सृष्टिकाल में अनेक

रूपों में प्रकट भी होता है, उस सर्वनियन्ता, वरदायक, स्तुति करने योग्य परमेश्वर के ज्ञान होने के पश्चात् असीम शांति प्राप्त हो जाती है.

१२. जो रुद्र, इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करनेवाला और उसे आश्रय देनेवाला है. जिसने सर्वप्रथम ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ का दर्शन किया, जो सर्वाधिपति और सर्वज्ञ है. जो अपने उपासकों को आनन्द और बुद्धि देता है, उनके पापों और दुःखों का हरण करता है, और (कर्म के) नियम तोड़ने वालों को दंडित करता है—वह परमेश्वर हमें सद्बुद्धि प्रदान करें.

१३. वह जो समस्त देवों का अधिपति है, जिसमें समस्त लोक आश्रय पाता है, जो सभी द्विपदी एवं चतुष्पदी जीवों के उपर शासन करता है, हम उस ईश्वर की आराधना करें जो दीप्तमान् एवं आनंदमय है.

१४. जो सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है, जो कि अव्यवस्था (कोलाहल, अराजकता)[१] से भी एक व्यवस्थित ब्रह्माण्ड का निर्माण करता है, जो अनेक रूपों को धारण करता है, जो सभी वस्तुओं का निर्माणकर्ता है, उस अद्वितीय कल्याणस्वरूप महेश्वर के ज्ञान के पश्चात् परम शांति प्राप्त होती है.

[१] *यह बिग बैंग थ्योरी की ओर संकेत करता है जब समस्त ब्रह्माण्ड में कोलाहल, अव्यवस्था एवं अराजकता था.*

१५. वही सही समय पर विश्व का एकमात्र संरक्षक है. वह समस्त जगत् का अधिपति है. वह समस्त प्राणियों में प्रच्छन्न (छिपा) है जिसमें ब्रह्मर्षिगण एवं देवगण भी ध्यानमग्न रहते हैं. उसका ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् मृत्यु के सारे बंधन समाप्त हो जाते हैं.

१६. जिसने समस्त जगत् को चारों ओर से घेरा हुआ है, जो समस्त जीवों में सूक्ष्मतम रूप में प्रच्छन्न है, जैसे मक्खन दूध में छुपा होता है, उस कल्याणकारी परमदेव का ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् मनुष्य समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है.

१७. जिस ईश्वर ने इस विश्व की रचना की और जो सर्वस्व में विद्यमान है जो सभी जीवों के हृदय में प्रच्छन्न रहता है तथा जो व्यक्तिगत भावनाओं, बुद्धि एवं कल्पना के आधार पर प्रत्यक्ष होता है. जिन्हें इसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है वे अमर हो जाते हैं.

१८. जब अज्ञान का अंधकार मिट जाता है, तब न तो दिन होता है और न रात होती है, न सत् होता है न असत् होता है. केवल एकमात्र कल्याणमय शिव ही है जो अनश्वर है, वह सूर्याभिमानी देवता का भी उपास्य है. वही समस्त प्राच्य ज्ञान (ancient wisdom) का स्रोत है जो हमारे पास वेदों क माध्यम से आई है.

१९. उसका किसी रूप में ज्ञान नहीं हो सकता है. उसके न तो कोई समान है और न ही उससे कोई बड़ा. उसका नाम ही महान गौरव की बात है.

२०. उस परब्रह्म परमात्म का स्वरूप हमारे इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है. उसे नेत्रों के द्वारा भी नहीं देखा जा सकता. जो इस हृदय में स्थित अंतर्यामी परमेश्वर को भक्तियुक्त हृदय से निर्मल मन के द्वारा इस प्रकार जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं.

२१. हे रुद्र, आप अजन्मा हो, जो आत्मा जन्म और मृत्यु के बंधन से भयभीत है वे आप ही में शरण लेता है. हे रुद्र, आपका कल्याणमय मुख हमारी सदा रक्षा करे.

२२. हे रुद्र, हम अपनी रक्षा के लिए अनेकों प्रकार के पूजन सामग्री से सदा आपकी आराधना करते हैं. अतः कभी भी क्रोधित होकर हमारे पुत्र एवं पौत्रों का संहार मत करो, हमें मत मारो, हमारी गायें या घोड़े को नष्ट मत करो. अपने क्रोध से वीर पुरुषों का संहार भी मत करो.

अध्याय ५

१. अचल, अनंत परम ब्रह्म में दोनों---विद्या और अविद्या---ही प्रच्छन्न रूप से स्थित है. अविद्या संसारिकता की ओर एवं विद्या अमरता की ओर ले जाता है. ब्रह्म, जो विद्या एवं अविद्या दोनों को नियंत्रित करता है, इन दोनों से भिन्न है.

२. वही प्रकृति के समस्त योनि पर शासन करता है और उसके समस्त रूपों को, समस्त कारणों को नियंत्रित करता है. वह प्रथम जन्मा आदिनारायण (हिरण्यगर्भ) को, जो ब्रह्मा के जन्म के द्रष्टा हैं, ज्ञान एवं बुद्धि प्रदान करता है.

३. इस लोक में सभी वर्गों को प्रजातियों में, और प्रजाति को सदस्यों में विभिन्न प्रकार से विभक्त करके परमात्मा प्रलयकाल में उनका संहार करता है. सृष्टिकाल में पुनः समस्त लोकपालों की रचना करके उनके उपर शासन करता है.

४. जिस प्रकार सूर्य अकेला ही समस्त वातावरण में, उपर-नीचे, इधर-उधर, सब ओर से प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है उसी प्रकार वह भगवान, जो सभी अच्छाइयों एवं महानताओं का भण्डार है, अकेला ही समस्त शक्तियों पर शासन करता है और सभी कारणों का कारण है.

५. वह इस ब्रह्माण्ड का स्रोत है, वह समस्त पदार्थो को अपने आप के अन्दर से ही अनेक रूपों में लाता है और अकेला ही कर्मों के अनुसार गुणों के संयोग से जीवों को निपुण बनाता है और इस विश्व पर शासन करता है.

६. वह वेदों के सार, उपनिषदों में प्रच्छन्न (छिपा) है. भगवान् ब्रह्मा उसे अपना एवं वेदों का स्रोत मानते हैं. जो देवता एवं ऋषि उन्हें जानते थे, वे उन्हीं के साथ तन्मय होकर अमर हो गये.

जीवों के पुनर्जन्म का कारण

७. जो वस्तुओं के रुचिकारक गुणों से मोहित होकर फलों के उद्देश्य से कार्य करता है, अपने कर्मों के फल को भोगता है. इन्द्रियों के स्वामी होने पर भी विभिन्न रूपों को धारण कर तीनों गुणों से बंध जाता है और अपने कर्मों के अनुसार तीनों मार्गों–उत्तरायण, दक्षिणायन और निम्न नारकीय–पर विभिन्न योनियों में भटकता है (भ.गी. ८.२४-२६ एवं १४.१८ को भी देखें.).

८. वह अंगूष्ठमात्र के आकार का सूर्य की तरह देदीप्यमान, संकल्प और अहंकार से रहित, बुद्धि एवं आत्मगुण के कारण, सूई के नोक जैसे सूक्ष्म आकारवाला है, ऐसा वह ज्ञानियों के द्वारा देखा गया है.

९. वह व्यक्तिगत आत्मा (जीवात्मा) सैकड़ों बार विभाजित केशाग्र की तरह सूक्ष्म है. तब भी वह अनंत है. इसलिए उसका स्वरूप जानने की जरुरत है.

१०. जीव न तो नर है न ही नारी और न ही नपुंसक. वह जो भी शरीर धारण करता है उसी के जैसा हो जाता है.

११. संकल्प, आसक्ति और मोह के कारण वह शरीरी आत्मा, अनेक जगहों पर अपने कर्मानुसार अनेक रूप धारण करता है. जिस प्रकार शरीर का विकास भोजन एवं पानी से होता है, उसी प्रकार **जीव अपने प्रयास से ही अपना विकास कर पाता है और उच्चतम लक्ष्य तक पहुंच जाता है.**

१२. जीवात्मा अपने मन एवं कार्य के गुणों एवं शरीर के गुणों के आधार पर अनेकों सूक्ष्म एवं विशाल रूप धारण करता है. इसमें परमात्मा, जो सर्वज्ञाता, सर्वनियंता है और सबका लेखा जोखा रखता है, उसकी मदद करता है.

१३. उसे जानकर–जिसका न तो आदि है और न ही अंत है, जो सदा स्थिर रहता है, जो इस ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता है, जो अनेकों रूपों को धारण करता है, जो सभी को अपने अंदर समाहित कर सकता है–जीव सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है.

१४. उस परमात्मा ने उर्जा एवं सभी पदार्थों (energy and matter) का सृजन किया है, वह समस्त षोडश कलाओं एवं ज्ञाण-विज्ञान का स्रोत है, वह शुद्ध एवं समर्पित आत्मा के द्वारा ही जाना जाता है. उस आनंदमय, नामहीन एवं रूपहीन का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् उपासक शरीर के बंधनों से मुक्त हो जाता है.

अध्याय ६

१. कुछ मोहग्रस्त विचारक प्रकृति को और कुछ काल को जगत् का कारण मानते हैं. लेकिन वास्तव में सृष्टि ईश्वर की महिमा का प्रदर्शन है जिसके द्वारा यह ब्रह्मचक्र चलता रहता है.

२. उस परमेश्वर से ही यह समस्त जगत् नित्य व्याप्त है. यह ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही काल का भी महाकाल, सर्वगुणसम्पन्न और सर्वज्ञाता है. उससे ही शासित हुआ यह जगत्रूप कर्म विभिन्न प्रकार से यथायोग्य चल रहा है और ये पृथ्वी, जल, प्रकाश, वायु एवं आकाश, भी उसी से शासित होते हैं. उसका इसी प्रकार चिन्तन करना चाहिए.

३. परमात्मा सृष्टि सृजन के आदि एवं अंत के पश्चात् अपने आप को इससे अलग कर लेते हैं (वे एक दर्शक की तरह अलग रहते हैं). वे काल और उसके अंतरंग गुणों के कारण आत्मा और वस्तु के सिद्धान्त– चेतना, द्वैत, और तीन गुणों को आठ तत्त्वों के साथ कर– को एक कर रचना करते हैं.

४. जो भगवान के प्रति सेवाभाव से सभी कार्यों को संपादन से मन की शुद्धता प्राप्त कर लेता है और प्रकृति एवं इसके सभी प्रभाव को ब्रह्म में सम्मिलित कर देता है, वह अपने सही आत्मा को पहचान लेता है. इस प्रकार वह भौतिक विश्व से परे हो जाता है. गुणों के अभाव में उसके सभी पुराने कर्म नष्ट हो जाते हैं. अपने प्रारब्ध कर्मों के नष्ट होने के उपरांत उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है.

५. परमेश्वर ही आदि कारण है जो आत्मा को शरीर से जोड़ता है. वह काल के तीनों विभाजन (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) से परे है. अपने हृदय में स्थित उस सर्वरूप एवं जगत्रूप में प्रकट स्तुति करने योग्य उस पुरुष-पुराण परमदेव की उपासना करके साधक मोक्ष की प्राप्ति करता है.

६. जिसने इस ब्रह्माण्ड का सृजन किया है, जो सभी रूपों और समय से भी श्रेष्ठ है. जब उसका–जो अंतर्मन में रहता है, शुभकर्ता है, दुष्टनिवारक है, सभी शक्तियों का स्वामी है, सभी का आश्रय है–ज्ञान हो जाता है तब साधक को अमृतस्वरूप परब्रह्म प्राप्त होता है.

७. हमें उसका ज्ञान परमाराध्य, परमेश्वर, महेश्वर, परमेन्द्र, परमपति, स्वयं प्रदीप्त, भुवनेश्वर के रूप में होना चाहिए.

८. वह अनंग (उसका कोई शरीर या इन्द्रिय नहीं है) है. न तो कोई उसके समान है या न ही उससे श्रेष्ठ है. वेदों में उनके स्वाभाविक अलौकिक शक्ति एवं ज्ञान, बल और क्रिया के विषय में अनेकों रूप में लिखा गया है.

९. इस विश्व में न तो कोई उसका स्वामी है और न ही उसका कोई शासक है. किसी भी रूप में उसका अस्तित्व प्रमाणित नहीं किया जा सकता है. वह सभी कारणों का कारण है और समस्त करणों का अधिष्ठाता है. उसका न तो कोई जनक है, और न ही कोई स्वामी.

परमेश्वर इस सृष्टि के उपादान और निमित्त दोनों कारण है

१०. मकड़ी की तन्तुओं की भांति जिस परमात्मा ने अपने मुख्य शक्ति (माया) से उत्पन्न कार्यों द्वारा अपने को अपनी ही जाल में फंसा रखा है वह अपने ब्रह्मरूप में हमें सम्मिलित करें.

जैसे कोई मकड़ी अपने अंदर से जाल बुनती है, इससे खेलती है और फिर इसे अपने अंदर समेट लेती है, उसी प्रकार परमेश्वर भी इस भौतिक जगत का निर्माण अपने अंदर से करता है, इससे एक जीवित प्राणी के रूप में खेलता है और प्रलय काल में इसे अपने अंदर समेट लेता है. संपूर्ण विश्व का पुनः आविर्भाव होता है और अंत में उसी परमात्मा में लय हो जाता है. यह प्रक्रिया अनवरत जारी रहती है. यह उसी प्रकार होता है जैसे कोई पानी का बुलबुला जन्म लेता है, वृद्धि प्राप्त करता है और अंत में पानी में ही मिल जाता है. आत्मा स्वयं ही इस जगत को, बिना किसी अन्य की सहायता से, प्रकट करती है. विभिन्न शक्तिओं के आधार पर परमात्मा के लिए यह संभव है कि वह बिना किसी बाह्य सहायता के विविध रूपों में परिवर्तित हो जाए. इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ही इस सृष्टि के उपादान और निमित्त दोनो कारण है.

११. ईश्वर जो एक है और सभी जीवों में छिपा है. वह सर्वव्याप्त है, और सभी जीवों की अंतरात्मा है. वह सभी कर्मों को नियंत्रित करता है और सभी जीव उसमें वास करते हैं. वह मात्र साक्षी है और प्रकृति के तीनों गुणों से स्वतंत्र शुद्ध चैतन्य है.

१२. वह अकेला ही अनेकों का शासक है, जो उसके निमित्त मात्र हैं. वे एक प्रकृतिरूप बीज से अनेकों में परिवर्तित हो जाते हैं. जो धीर पुरुष उनकी उपस्थिति का ज्ञान रखते हैं उन्हें ही शाश्वत शांति प्राप्त होती है अन्य किसी को नहीं.

१३. वह सनातनों का भी सनातन है और बुद्धिमानों में भी बुद्धिमान है. यद्यपि वह एक है पर अनेकों की इच्छाएं पूरी करता है. उसके ज्ञान---कि वह सभी का कारण है---के पश्चात् साधक सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है. उसे ज्ञान एवं धार्मिक अनुशासन से ही प्राप्त किया जा सकता है.

ब्रह्म प्रकाशों का प्रकाश है

१४. वहां सूर्य प्रकाशित नहीं होता, न ही चांद, न ही तारे न ही अग्नि. उसके प्रकाशित होने पर ही उसके बाद ये सभी प्रकाशित होते हैं. **उनके प्रकाश से ही यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित होता है.**

परमेश्वर का मार्ग

१५. इस ब्रह्माण्ड में अज्ञान का वह एकमात्र विनाशक है. वही अग्नि में भी है और जल में भी है. उसके ज्ञान के उपरांत ही कोई मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है. उस दिव्य परमधाम की प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है.

१६. वह समस्त जीवों का सृष्टिकर्ता है और सर्वज्ञाता है. वह स्वयं ही अपना स्रोत है. वह संपूर्ण दिव्यगुणों से संपन्न, सर्वज्ञ, कालों का भी महाकाल है. वह प्रकृति एवं जीवात्मा का नियन्ता और समस्त गुणों का स्वामी है. वह जन्म एवं मृत्यु चक्र के बंधन में डालने, उसमें स्थित रखने, एवं उससे मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र कारण है.

१७. वह इस जगत् की आत्मा है. वह अमर है एवं वह शासक है. वह सर्वज्ञ, सर्वव्याप्त, सृष्टि संरक्षक एवं चिरन्तन शासक है. उसके अलावा इस विश्व के उपर शासन करने के लिए कोई अन्य उपयुक्त नहीं है.

१८-१९ उसने इस सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उन्हें समस्त वेदों का ज्ञान समर्पित किया. उस अखण्ड, क्रियारहित, सर्वथा शान्त, निष्कलंक, निर्मल, अमृत के परम सेतुरूप, दग्ध ईंधन से युक्त, अग्निस्वरूप उस परमात्मज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करनेवाले प्रसिद्ध परम परमेश्वर को मैं, मोक्ष की इच्छावाला साधक, आश्रयरूप में ग्रहण करता हूं.

२०. जब पुरुष आकाश को एक कागज की तरह समेट लेंगे तब ही वे ईश्वर के ज्ञान के बिना अपने दुःखों का अंत पा सकते हैं.

(कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर-ज्ञान के अतिरिक्त दुःखों का अंत उसी तरह असंभव है जिस प्रकार आकाश को कागज की तरह समेटने का)

२१. ऐसा कहा जाता है कि ऋषि श्वेताश्वतर ब्रह्म ज्ञान को अपने तप के प्रभाव से एवं भगवद् कृपा से ही जान सके. उनके द्वारा परम पवित्र ब्रह्म तत्त्व को आश्रम के अन्य संन्यासियों को दिया गया.

२२. वेदान्त का परम गहन ज्ञान पुराने युगों में बताया गया. यह ज्ञान उसे नहीं देना चाहिए जिसका रजोगुण अभी समाप्त नहीं हुआ हो, न ही उसे देना चाहिए जो कि योग्य पुत्र या शिष्य नहीं हो.

२३ जिसकी परमेश्वर तथा गुरु में भक्ति है, उस उत्तम पुरुष (महात्मा) के हृदय में ही इस सत्य का गूढ़ार्थ प्रकाशित होता हैं.

ॐ तत् सत्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् की व्याख्या

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते.
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शाब्दिक अनुवाद : वह अनंत है, ये सब भी अनंत हैं; उस अनंत से ये सब अनंत आते हैं. अनंत से अनंत निकल जाने पर; अनंत तब भी अनंत ही रह जाते हैं.

एक सरल अनुवाद : ब्रह्म अनंत है, अनंत ब्रह्माण्ड अनंत ब्रह्म से आती है और उसी में चली जाती है. ब्रह्म तब भी अनंत और अपरिवर्तित रहता है.

शब्दकोश के अनुसार इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण शब्द "पूर्ण" का इस मंत्र में अर्थ हैः पूर्ण, सम्पूर्ण, कुल, असीम, निपुण, शक्तिशाली, अपरिमित, अनंत, अमित, आदि. वेदों एव उपनिषदों में ब्रह्म की व्याख्या के लिए अपरिमित शब्द का प्रयोग किया गया है. हमने यहां "पूर्ण" शब्द के लिए "अनंत" शब्द का प्रयोग किया है.

हमारे विचार में, ब्रह्म की व्याख्या के लिए "अपरिमित" शब्द गणित के अनुसार किसी अन्य शब्द से श्रेष्ठतर है. तैत्तिरीय उपनिषद् (श्लोक २.१.१) ब्रह्म की व्याख्या "सत्य, ज्ञान और अनंत ब्रह्म" के रूप में करता है. इस उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि ब्रह्म वह है जिससे सब कुछ आता है, दीर्घकाल तक चलता रहता है, और अंततः जिसमें सब कुछ मिल जाता है (श्लोक ३.१.१).

एक नये विद्यार्थी, या किसी प्रारंभिक स्तर के वेदान्तिन् को इस शाब्दिक अनुवाद को देखते हुए उलझन हो सकती है. लेकिन जैसा कि हम देखेंगे इस मन्त्र का अर्थ अत्यंत प्रगाढ़ है. इसकी प्रकांडता के विषय में किसी ने कहा है कि किसी कारणवश यदि संपूर्ण वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य इस पृथ्वी से समाप्त हो जाए और एकमात्र यह मंत्र रह जाए या कोई ऐसा रह जाए जिसके मानस पटल में यह मंत्र अंकित हो तो मुझे दुःख नहीं होगा. यह कोई साधारण मंत्र नहीं है. इसके अंतर्गत संपूर्ण वेद दर्शन समाहित है, जो कि सभी का सार्वभौम सत्य है. यह उस मौलिक प्रश्न का उत्तर देता है कि मैं कौन हूं और इस विश्व में मैं किस प्रकार रहूं?

इस मंत्र का प्रथम भाग कहता है कि जो भी इस विश्व में ज्ञात या अज्ञात आत्माएँ हैं, वे उस अनंत ब्रह्म के रहित कुछ भी नहीं है. भगवद्गीता भी श्लोक ७.२४ में यही कहता है—वासुदेवः सर्वम् इति. जो ब्रह्म नहीं है, वह कुछ भी नहीं है. इस विश्व में एकमात्र ब्रह्म है और कुछ भी नहीं है. ब्रह्म अपरिमित है, अनंत है, अद्वितीय है और इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि एवं अंत है.

हमारा अनुभव बताता है कि जब सभी वस्तुएं जिहें हम देखते हैं वे अंतरिक्ष, काल एवं कई अन्य तरीके से सीमित हैं तब किस प्रकार से जगत् में कुछ भी असीमित हो सकता है? आत्मा अपरिमित हो सकती है, लेकिन किस प्रकार से दृश्य वस्तुएं, जैसे यह जगत् या हमारा शरीर अपरिमित हो सकता है? क्या सभी वस्तुएं अपरिमित हो सकती हैं? महासागर अपरिमित हो सकती हैं, पर तरंगे नहीं. कुछ तरंगे छोटी होती हैं और कुछ

बड़ी पर ये सभी काल एवं स्थान में सीमित होते हैं. जब तक हमे उन्हें देखते रहते है, तरंगे सीमित लगती हैं जबकि महासागर अपरिमित अस्तित्व वाला लगता हैं. यदि हम तरंगों को महासागर का ही एक भाग समझते हैं या दोनों को ही जल समझते हैं, तब तरंग महासागर की तरह ही अपरिमित है. अद्वैतिक दृष्टिकोण के अनुसार यदि महासागर असीमित है तो तरंगे भी, क्योंकि महासागर एवं तरंगे दोनों का ही एक अद्वैतिक अस्तित्व है. **इस प्रकार द्वैत दृष्टि से, तरंगे अपूर्ण और सीमित प्रतीत होती हैं, लेकिन वे महासागर की तरह अनंत हैं. किसी एक तत्त्व के अनंत या पूर्ण और अन्य के सीमित या अपूर्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता.** यदि हम मानते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, वरन् शरीर में वास करनेवाली अनंत आत्मा हैं तो हम वस्तुतः असीमित एवं अनंत हैं. **द्वैत केवल प्रतीत होता है, वास्तव में है नहीं.**

द्वैत के खण्डन का तात्पर्य है द्वैत की वास्तविकता का खण्डन, लेकिन द्वैत के अनुभव का खण्डन नहीं. वास्तविक जीवन में जिस द्वैत का हम अनुभव करते हैं, वह प्रत्यक्ष या सापेक्षिक होता है, जिसे कि वेदान्त में मिथ्या भी कहा जाता है. द्वैत की दृष्टि से, एक छोटी तरंग बड़ी तरंग में समा जाने से डरती है, और महासागर से बड़ी तरंग से रक्षा के लिए प्रार्थना करती है. ये सारी प्रार्थनाएं और पूजा इसी के लिए हैं. अद्वैतिक दृष्टि से ऐसा कोई भय नहीं है. इस विश्व में सब कुछ अन्योन्याश्रय (interaction) है, एक खेल है, एक खगोलीय घटना मात्र है. वेदान्त द्वैत को केवल प्रतीति स्वरूप मानता है—वास्तविक नहीं—विभिन्न वस्तुओं के बीच अंतर का अनुभव मात्र. एकता की प्रतीति विविध प्रकार से होती है. अद्वैत का अनुभव हर्ष एवं आनंद लाता है. द्वैत से क्षणिक राहत एवं समाधि के समय अद्वैत का अनुभव (या मन की परम चेतनावस्था), आनंद एवं शांति लाती है. समाधि में द्वैत का उन्मूलन क्षणिक होता है और वह सभी के अधिकार क्षेत्र से परे है. द्वैत की वास्तविकता का पूर्ण खण्डन हमारे मानस पर स्थायी, आश्चर्यजनक एवं आनंद दायक प्रभाव छोड़ता है.

द्वैत का अनुभव तब तक कठिनाई उत्पन्न नहीं करता जब तक हमें इसका ज्ञान नहीं होता कि **द्वैत प्रतीति मात्र है, वास्तविक नहीं.** मैं जगत् से भिन्न नहीं हूं और जगत् भी मेरे से भिन्न नहीं है. सब कुछ ब्रह्म है. असीमित, अनंत या अद्वैत ब्रह्म का तात्पर्य यह भी है कि इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म के अतिरिक्त किसी और की सत्ता नहीं है. **ब्रह्म सृष्टि एवं सृष्टिकर्ता दोनों है.** दूसरे शब्दों में ब्रह्म उपादान और निमित्त (material and instrumental) दोनों कारण है सृष्टि का. खगोल का. ब्रह्म के अतिरिक्त कोई और कारण या सत्ता नहीं है.

वेदान्त दो उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार एक ही तत्त्व सृष्टि का उपादान और निमित्त दोनों कारण हो सकता है. एक उदाहरण उस मकड़े का है जो अपने अंदर के द्रव्य से ही जाल बनाता है. **यहां पर मकड़ी दोनों है—सृष्टि एवं सृष्टिकर्ता, अर्थात् जाल और जाल बनानेवाला.** संपूर्ण सृष्टि, दृश्य एवं अदृश्य, सृष्टि चक्र से आती है और उसी में विलीन हो जाती है या उस महाप्रलय के काल में ब्रह्म मे विलीन हो जाती हैं (भ.गी. ९.०७). ब्रह्म सभी पदार्थों को अपने अंदर से निकालता है, और उसी से यह

चित्रपटरूपी अद्भुत जगत् का निर्माण करता है और पश्चात् इसे मकड़े की भांति अपने अंतर लय कर लेता है.

एक और उदाहरण उस स्वप्नलोक का है **जहां पर स्वप्नद्रष्टा स्वयं अपने स्वप्नलोक का** उपादान और निमित्त **दोनों कारण होता है.** जगत् का निर्माण जगतकर्ता के मानस की स्वप्न सृष्टि है. जब हम स्वप्न में होते हैं तो कर्ता (या सृष्टिकर्ता) और कर्म, स्वप्नलोक (या सृष्टि), यह सब हम ही होते है. स्वप्नद्रष्टा का मानस ही स्वप्न का उपादान और निमित्त दोनों कारण होता है. जब हम स्वप्नलोक के युद्धक्षेत्र में स्वप्न युद्ध करते हैं तो दोनों ओर के योद्धा–बम, गोली, पथरीले रास्ते, बारुदी सुरंगे, परिचारिकाएं, अस्पताल वाहन एवं दवाईयां–ये सभी हमारे अतिरिक्त कोई और नहीं होता!

इस प्रकार, इस उपनिषद् के मंत्र का प्रथम अर्द्धभाग अति प्रशंसनीय रूप से इस सार को प्रस्तुत करता है कि अनंत ब्रह्म ही इस सृष्टि का उपादान और निमित्त दोनों कारण है. यह सृष्टि सृष्टिकर्ता से आती है और सृष्टि एवं सृष्टिकर्ता दोनों ही अनंत हैं और एक ही हैं. वही सब है, वही सर्वेश्वर है, एवं वह सब में है. **इस सृष्टि के कारण सृष्टिकर्ता में कोई बदलाव नहीं आता है.**

जब सृष्टि के समय अनंत सृष्टियां होती हैं, और विलीन हो जाती है तब अनंत परमेश्वर का क्या होता है? यह मंत्र के दूसरे अर्द्ध में बतलाया गया है–

पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते.

सृष्टि चक्र के समय अनंत सृष्टि को अनंत ब्रह्म से निकल जाने या महाप्रलय के समय अनंत जगत् से अनंत ब्रह्म के योग के पश्चात् अपने अनंत वैश्विक रूप में अनंत ब्रह्म ही शेष रहता है. इसे गणितीय रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–कोई भी अंक अनंत में अनंत के योग या वियोग से अनंत के सम ही होता है. कृष्ण का यह व्यापक अनंत रूप, ब्रह्म, अर्जुन को दिखाया गया, जिसे कि भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में विस्तार पूर्वक बताया गया है.

इस अनंत ब्रह्म से अनगिनत जगत् के सृष्टि के पश्चात् भी यह अनंत ब्रह्म अपरिवर्तित रहता है. इस अनंत अलौकिक रूप को किस प्रकार का परिवर्तन करना होगा जिससे कि वह अनंत, दृश्य एवं अदृश्य दोनों तरह के जगत का निर्माण कर सके? वास्तव में इस तरह के रूपांतरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता क्योंकि न तो कोई निर्माण होता है और न ही इस जगत् में कोई विनाश होता है. **उर्जा के संरक्षण सिद्धान्त के अनुसार, उर्जा या वस्तु का न तो निर्माण किया जा सकता है न ही विनाश किया जा सकता है. इसका केवल एक रूप से दूसरे रूप में रूपांतरण मात्र होता है–अदृश्य रूप से दृश्य रूप में एवं विलोमतः (vice-versa).** आइंस्टीन भी अंततः इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे जब उन्होंने अपना प्रसिद्ध समीकरण दिया था: $E = mc^2$. इस प्रकार जब ब्रह्म से यह अनंत, दृश्य जगत् बाहर आता है तब ब्रह्म में कोई आंतरिक परिवर्तन नहीं होता. भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि यह दृश्य अनंत जगत् उनके उर्जा का एक अंश मात्र है. **(भ.गी. १०. ४१-४२)**

इस प्रकार के परिवर्तन के संबंध में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं. जब स्वप्नलोक की वस्तुएं उससे बाहर आ जाती हैं तब भी स्वप्नद्रष्टा में कोई परिवर्तन नहीं होता. बिना

किसी वास्तविक परिवर्तन के रहित भी कपास कपड़ा बन जाता है. कपड़ा वास्तव में कपास का ही दूसरा रूप है. सोने की चेन, सोने से ही बनी होती है, बिना सोने में किसी विशेष परिवर्तन के. उसी तरह से मिट्टी बर्तन में परिवर्तित हो जाता है. जबकि मिट्टी मिट्टी ही रहता है बर्तन निर्माण के पूर्व भी, बर्तन निर्माण के समय भी, और जब बर्तन नष्ट हो जाता है तब भी. वास्तव में कोई बर्तन था ही नहीं, वहाँ हमेशा मिट्टी थी. मिट्टी ही बर्तन के रूप में दिख रही थी. पानी महासागर, तरंगों, और बुद्बुद् के रूप में प्रतीत होता है, सोना चेन बन जाता है, स्वप्नद्रष्टा, स्वप्न की वस्तुएं बन जाता है बिना किसी वास्तविक परिवर्तन के. उसी तरह से अंधेरी रात में रज्जू सर्प की भांति प्रतीत होती है. और अद्वैतिक ब्रह्म हमारी मानसिक दशा के कारण द्वैत जगत् प्रतीत होता है–अज्ञान के अंधकार के कारण. दृश्य जगत् और इसकी सभी वस्तुएं अदृश्य ब्रह्म के अलावा कुछ और नहीं है. **इस श्लोक से हमें यह भी पता चलता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वरन् अनंत आत्मा हूं, जो मैं हमेशा होना चाहता था.**

इस प्रकार से सृष्टि, जो एक प्रभाव है, इसके भौतिक एवं सहायक कारण–शाश्वत ब्रह्म–से अलग नहीं है (देखें भ.गी. अध्याय १३ अवं १५). ब्रह्म को सर्वत्र एवं सभी चीजों में देखने के लिए हमें जगत् की वस्तुओं को न तो परिवर्तित करने की आवश्यकता है, न त्यागने की, और न ही उसे स्वप्न की वस्तुएं जानकर पूर्णतः नकारने की (भ.गी. ६.३०). जिस प्रकार स्वर्ण दर्शन हेतु कण्ठमाल को द्रवित करने की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार भगवद्दर्शन के लिए इस लोक को त्यागने की आवश्यकता नहीं. **कपड़े के टुकड़े में या कपास में या सूत में बुनकर उपस्थित नहीं होता है, लेकिन सृष्टि में, सृष्टिकर्ता न केवल उसके उपादान और निमित्त कारणों से उपस्थित है वरन् सृष्टि के कण-कण में भी स्थित रहता है.** यही अंतर है मानवीय यांत्रिकी एवं खगोलीय यांत्रिकी में. खगोलीय मानस उसे विभिन्न रूपों में प्रकट करता है. यह अलौकिक विज्ञान का ज्ञान है, सहज, सरल एवं मनोहर.

यह संपूर्ण सृष्टि परमपिता परमेश्वर का शरीर है, एक दैविक प्रस्फुटन है, जिसका हमें आदर एवं सत्कार करना चाहिए. कोई पाप या पापी नहीं होता, ये सब परमात्मा के विभिन्न रूप हैं. पापी एक कच्चे आम की तरह होता है–अति कटु एवं तिक्त, जबकि एक सच्चा संत पके आम की तरह रसीला, मीठा एवं सुवासित होता है.

अध्यात्म का यह ज्ञान, एक स्फुर्तिदायक ताजे हवा के झोंके की तरह, दुसरे देशों की विचारधारा, संस्कृति एवं लोगों के विषय में एक नवीन दृष्टिकोण लायेगा. यदि यह हमारे जीवन में रातोंरात कोई परिवर्तन नहीं लाता है तब भी यह हमारे व्यक्तिगत जीवन को समृद्ध करेगा. यह समझा जा सकता है कि अद्वैत ज्ञान ही अध्यात्म है जबकि अपूर्ण ज्ञान या कोई भी धार्मिक ज्ञान द्वैत है. इस अधूरे धार्मिक ज्ञान ने ही संघर्ष एवं धार्मिक उन्माद पैदा किया है जिसे अलौकिक, अद्वैतिक, वैदिक ज्ञान या भगवद्गीता एवं उपनिषद् जैसे वैदिक शास्त्रों के माध्यम से दूर किया जा सकता है. इस उपनिषद् के एकमात्र मंत्र में अध्यात्म एवं सच्चे धर्म का सार है. यह हमारे व्यक्तिगत जीवन में एवं विश्व में शांति, सहमति एवं सामंजस्य ला सकता है. आध्यात्मिक होने के लिए धर्म परिवर्तन आवश्यक नहीं है. अनंत ब्रह्म से अनंत ब्रह्माण्ड का सृजन होता है, पुनः उनका लय हो जाता हैं, पर अनंत ब्रह्म अनंत ही रहता है. जिस प्रकार महासागर में अनंत तरंगे

आती हैं और चली जाती हैं, लेकिन महासागर वैसा ही रहता है क्योंकि ये दोनों—महासागर और तरंगे— वास्तव में केवल जल के ही रूपान्तरण हैं और जल ही की तरह अनंत हैं.
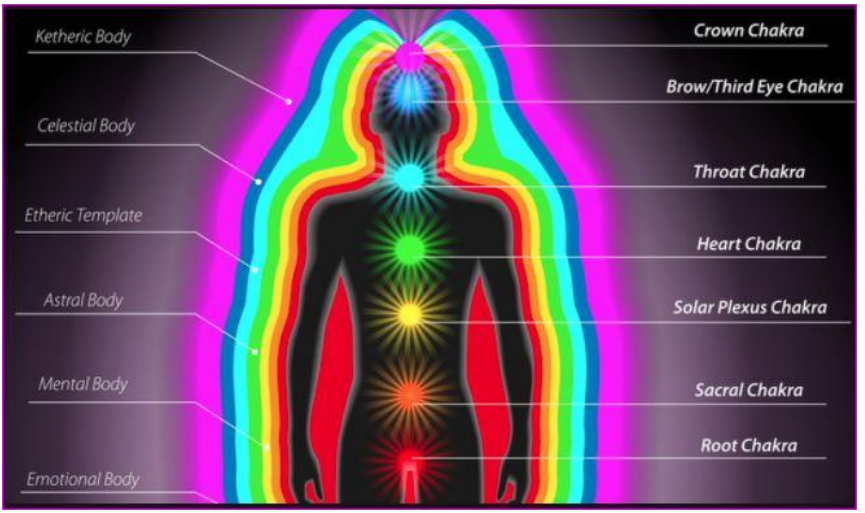
ॐ तत् सत् ॐ